CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८८
२८७९१
१९८३

ॐ

श्री १०८ दिगंबरजैनाचार्य सूर्यसागरजी महाराज
कृत संग्रह

आत्म-साधन-मार्तण्ड

प्रकाशक—
ब्र० लक्ष्मीचन्द वर्णी
आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर संघ, देहली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ ॐ ❀

राद्

वर्ग संख्या ..... 2 7 1 5 6 3 प्राप्ति-संख्या 2 6 9 2

ग्रन्थ-कार्ड

श्री गणेश वर्णी दि० जैन (शोध) संस्थान

ग्रन्थागार

नरिया, वाराणसी-५

ग्रन्थ नाम ..... अध्यात्म मार्तण्ड

लेखक ..... सूर्यसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्री ॥

2692
B, 14673

आत्म-साधन-मार्तण्ड

श्री १०८ निर्ग्रन्थ दिगंबर जैनाचार्य सूर्यसागरजी महाराज
कृत संग्रह

संशोधक—
पं० बाबूलाल शास्त्री प्रकाशक जैन गजट नई सड़क देहली

प्रकाशक—
ब्र० लक्ष्मीचन्द वर्णी
आचार्य १०८ श्री सूर्यसागर संघ, देहली

तृतीयावृत्ति २०००

माघ शुक्ला पूर्णिमा,
वीर निर्वाण सं० २४७८
विक्रम सं० २००८

मूल्य स्वाध्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ दो शब्द ❀

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर जी महाराज ने अनेकों ग्रंथ लिखे हैं उनमें से यह एक 'आत्म-साधन मार्तण्ड' भी है। इसमें आत्म साधना कैसे की जाती है, इसके लिए क्या करना पड़ता है और आत्मा में ही स्थिर होने के लिए कैसी भावना भाई जाती है? आत्म साधक को संसार और शरीर के स्वरूप का चिंतवन क्यों करना चाहिए? आदि बातों का विशदरूप से वर्णन किया गया है। साथ ही सामायिक क्यों करना चाहिए? कैसे करना चाहिए और सामायिक योग्य स्थान आदि का भी वर्णन किया गया है। एवं आत्म-बोध कराने वाली तथा संसार से उदासीन वृत्ति पैदा करने वाले 'अज्ञानी पाप धतूरा न बोय' 'आपा नहिं जाना तूने कैसा ज्ञान धारी रे!' 'भौंदू भाई समझ शबद यह मेरा' 'वैराग्य नहीं है विषयों से तो मन उपराम कहां से हो' आदि कई भजनों का भी इसमें संग्रह कर दिया गया है जिन भजनों को बारबार पढ़कर आत्मबोध जागृत एवं संसार से उदासीनता पैदा होती है। इस पुस्तक की यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित की गई है। यह पुस्तक प्रत्येक भवभीरु प्राणी के लिए अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय है।

बाबूलाल शास्त्री
सम्पादक—जैन गजट, दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर और मन का रोध कर आत्मा में लीन होने की क्रिया का नाम है सामायिक।

❀ ❀ ❀ ❀

जिन्होंने अपने मन, वचन और काय की शक्ति को व्यर्थ न गवां कर उसे अपने कोष में संचित रखा होगा उन्हें सामायिक सचमुच ही आनन्द का सागर जान पड़ेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

सामायिक-व्रत समभावों को देने वाला, दुःखी जगत को सुख का अमृत पिलाने वाला और लोक में सिद्ध-सुख का नमूना दिखाने वाला है।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि मनुष्य लोहा है तो सामायिक (आत्म-चिन्तन) उसके लिये पारस का काम करेग। उसे सोना बना देगा। यदि उसके जंग लगी हुई है तो यह उसके शाण का काम भी करेगा, उसे चमका देगा।

❀ ❀ ❀ ❀

पानी में मीन पियासी। मोहे रह रह आवे हांसी ॥पानी में० ॥टेक
ज्ञान विना बहु बन में भटक्यो, कित जमुना कित कासी ॥ १ ॥
जैसे हिरन नाभि कस्तूरी, बन बन फिरत उदासी।
त्यों तुम भरम जाल को त्यागो, कट जाय जम की फांसी ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायों की शान्ति शम इन्द्रियों का दमन-दम, और भोगों का त्याग यम इन तीनों से सामायिक होता है समय (आत्मा) को सदा काल भजो।

❀ ❀ ❀ ❀

कपड़े पर मैल आ गया है तो उसे धो दीजिये, कपड़ा स्वच्छ हो जायगा। उसे नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। आत्मा में विकार आ गया है तो दूर कर दीजिए, उसका शुद्ध स्वरूप झलकने लगेगा।

भेद ज्ञान साबू भयौ, समरस निरमल नीर।
धोबी अंतर आत्मा, धोवै निज-गुन-चीर॥

❀ ❀ ❀ ❀

समता रूप परिणामों के साथ सामायिक चाहे दो घड़ी ही क्यों न हो, उससे महान कर्मों की निर्जरा होती है।

❀ ❀ ❀ ❀

सामायिक की और कोई विशेष विधि समझ में न आवे तो मुमुक्षु को चाहिए कि वह एकाग्रता के साथ मन, वचन, काय को निश्चल कर स्वानुभव में मग्न हुआ प्रति दिन थोड़े समय इतना विचार तो अवश्य करे कि 'देह भिन्न, मैं भिन्न देह विनाशी, मैं अविनाशी।'

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्रीमत्पूज्यपाद निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैनाचार्य १०८ श्री
सूर्यसागरजी महाराज द्वारा रचित एवं संग्रहीत

आत्म-साधन-मार्तण्ड

मंगलाचरण

दोहा—अविनाशी आनन्दमय, त्रिविध कर्ममलहीन।
शुद्धद्रव्य चिद्रूप नमि, आत्ममार्तण्ड कीन॥

मैं रचयिता व संग्रहकर्त्ता नित्य, आनन्दस्वरूप तथा ज्ञानवरणादि द्रव्यकर्म, रागद्वेषादि भावकर्म और औदारिकादि नोकर्म से रहित चैतन्य स्वभाव रूप शुद्ध आत्मा को, मन, वचन, काय को सम्हाल कर नमस्कार करता हूँ। नमस्कार करने का मेरा प्रयोजन यह है कि उस चिदानन्दमय आत्मा के अनुभव से मेरे आत्मा की अशुद्ध परिणति का नाश हो और मैं परम निर्मल, अखण्ड और अक्षय चैतन्य स्वभाव में रमण करूँ। जो भव्य पुरुष इसका अनुभव करेंगे उनकी यही अवस्था होगी इसलिए मुमुक्षुजनों को इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म-साधन मार्तण्ड का स्वाध्याय कर आत्महित की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। इससे अवश्य ही शांति प्राप्त होगी।

उक्त सदुद्देश्य को लेकर ही इस पुस्तक द्वारा यहां सामायिक का, जो कि आत्मोन्नति का मुख्य साधन है, संक्षेप में कथन किया जा रहा है।

संसार का प्रत्येक प्राणी दुःखों से घबराता है और निरन्तर यही चाहता है कि मेरे दुःख दूर हो जावें। पर जब तक वह दुःखों को दूर करने का मार्ग न जान ले और विधिवत उस पर न चले तब तक उसके दुःख दूर कैसे हो सकते हैं?

यह आत्मा अनन्त सुख का भण्डार है, फिर भी दिन-रात दुःखों से सन्तप्त होकर 'त्राहि त्राहि' मचाया करता है। इसके तरह तरह के प्रयत्न इसीलिये होते हैं कि किसी प्रकार सुख प्राप्त हो। संसार के अन्यान्य पदार्थों को भी यह इसीलिए प्राप्त करना चाहता है। पर संसार के किसी भी पदार्थ को पाकर आज तक न तो किसी जीव को सुख हुआ और न अब हो ही सकता है। दूसरे किसी भी पदार्थ से सुख प्राप्ति की आशा निराशा-मात्र है। सुख तो स्वयं इसी के अन्दर है। वह कहीं बाहर से नहीं मिल सकता। जैसे अपनी ही नाभि में रहने वाली कस्तूरी की सुगन्ध को दूसरे पदार्थों में ढूंढने वाला हरिण मूर्ख है। ऐसी मूर्खता वह जीवन भर करता रहता है और प्राण दे देता है। यदि अनन्त भव धारण करके भी वह अपनी इस मूर्खता को न छोड़े तो उसका कभी उद्धार न होगा, वह दूसरे पदार्थों को सूंघ सूंघ कर मरता रहेगा और उसे कभी उनसे सुगन्ध प्राप्त न होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुगन्ध प्राप्त करने का तो एक यही मार्ग है कि अन्य पदार्थों की ओर ध्यान न देकर वह अपनी ओर देखे, अपने में उपयोग लगावे। यही मार्ग प्रत्येक जीव के लिये सुख-प्राप्ति का है। जब तक प्राणी का उपयोग पर पदार्थों में रहेगा, उन्हें अपनाने की चिन्ता और उनसे सुख प्राप्ति की आशा रहेगी तब तक उसे कभी सुख नहीं मिलेगा। पर पदार्थों के स्वरूप को विचार कर उनसे उपयोग हटाने से ही सुख प्राप्त हो सकेगा। यही आत्मा के उत्थान का मार्ग है। जैसा कि नाटक समयसार में लिखा है:—

जब चेतन संभारि निज पौरुष,
निरखै निज हगसौं निज मर्म।
तब सुखरूप विमल अविनासिक,
जानै जगत सिरोमनि धर्म॥
अनुभौ करै शुद्ध चेतन कौ,
रमै स्वभाव बमै सब कर्म।
इहि विधि सधै मुकति को मारग,
अरु समीप आवै सिव सर्म॥

जब यह जीव पुरुषार्थ धारण करके अपने नेत्रों से अपने मर्म को देखता है, ज्ञान-दृष्टि से अपने स्वभाव को पहचान लेता है तब समझता है कि मैं सुखरूप हूँ, निर्मल अविनाशी हूँ, संसार का शिरोमणि हूं। जब इसे अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब यह अपने उसी शुद्ध स्वरूप के अनुभव में लीन हो जाता है, स्वभाव में रम जाता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब कर्मों को अपने से अलग कर देता है। इस तरह से इसके मोक्ष-मार्ग की सिद्धि हो जाती है और शिव-सुख अपने आप प्राप्त हो जाता है।

दु:ख-मोक्ष या सुख-प्राप्ति का मार्ग इतना सीधा होते हुए भी वस्तुतः देखा जाय तो इस पर कितने मनुष्य चलते हैं ? जिस किसी को देखो, संसार के पदार्थों को अपनाने की चिन्ता में मग्न है। उसे अपने आपकी सुध-बुध ही नहीं है। उसकी दशा ठीक ऐसी ही है जैसे कि कोई प्राणी अग्नि के संताप को मिटाने की आशा से अज्ञानवश पुनः चारों ओर अग्नि से जलते हुए जंगल की ओर दौड़े। मनुष्य-भव पाकर भी उसके प्रयत्न दु:ख मिटाने के नहीं हैं, अपितु उन्हें दुगुना बढ़ाने के ही हैं। यह कभी विचार नहीं करता कि यह मनुष्य-भव मुझे क्यों मिला है, इसमें मेरा क्या कर्त्तव्य है, इत्यादि। यह अपने हित के सम्बन्ध में विचार न करना ही इसकी बुद्धि की विपरीतता का कारण है। कहा भी है—

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः किं प्राप्यः किंनिमित्तकः।
इत्यूहः प्रत्यहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत् ॥७८॥

(क्षत्रचूड़ामणि १ लं.)

मैं कौन हूं, मेरे में क्या गुण हैं, मैं कहां से आया हूं, मुझे यहां क्या प्राप्त करना है और उसकी प्राप्ति का साधन क्या है ? इत्यादि बातों का विचार प्रतिदिन न किया जाय तो बुद्धि उन्मार्ग में प्रवृत्त हो जाती है।

संसारी जीव दिन-रात अन्यान्य चिन्ताओं में तो लगे रहते हैं, किन्तु उक्त बातों का विचार एक क्षण भी नहीं करते। उक्त श्लोक में तो यह कहा गया है कि इन बातों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार प्रतिदिन करना चाहिये। एक दिन भी यह विचार न किया गया तो अनिष्ट होगा। यह विचारने की आवश्यकता नहीं है कि एक दिन जिस विषय पर विचार किया गया उसी पर फिर दूसरे दिन विचार की क्या आवश्यकता है ? नहीं, ऐसे विषयों पर प्रतिदिन विचार करने की और उन्हें प्रतिपल स्मरण रखने की आवश्यकता है। ऐसा करने से ही हित सिद्धि हो सकती है। जैसे शरीर के पोषण के लिये हम भोजन प्रतिदिन लेते हैं और प्रतिदिन भी एक बार से काम नहीं चलता तो दो बार, तीन बार भी लेते हैं। यही बात इन विचारों के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। यदि ऐसे विचारों से आत्मा पुष्ट होता है, उसकी शक्तियाँ जागृत होती हैं, वह अपने अकर्त्तव्य को छोड़कर कर्त्तव्य पर आरूढ़ होता है, पतन के गड्ढे से बचकर उन्नति की सीढी चढ़ता है तो ऐसे विचारों की प्रतिदिन ही क्या, प्रतिपल, प्रतिक्षण आवश्यकता है।

अपने को मुख्य समझो। यदि बड़े भारी कुटुम्ब ने तुमको घेर रखा है, यदि दिन-रात धन्धे से फुरसत नहीं है, यदि निर्धनता से तुम सताये हुए हो या अपने किसी प्यारे के वियोग से सन्तप्त हो या और किसी संकट में तुम फँस हो तो भी घबराओ नहीं। उक्त बातों के चिन्तन के लिए कुछ समय निकालो। तुम्हारे सब दुःख दूर हो जावेंगे, थोड़े ही दिनों में तुम अपने आपको सुखी अनुभव करोगे, अपूर्व शांति तुम्हें मिलेगी। यह उस सुख के खजाने को पाने की पहली सीढ़ी है, जिसपर चढ़कर तुम अपने हृदय के कपाटों को खोल सकोगे और अपने भीतर छिपे हुए अनन्त सुख शांति को स्वतन्त्रता के साथ पासकोगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत से मनुष्य यह कहा करते हैं कि हमारे पास तो समय ही नहीं है। पर मैं उनसे कहता हूं यह तुम्हारा बहाना मात्र है। दुनियां के धन्धे में फँसे हुए तुम्हें आत्म-चिन्तन के लिये अवकाश नहीं मिलता, यह ठीक नहीं; तुम चाहो तो बहुत समय निकाल सकते हो, यदि तुम्हें सच्ची लगन हो तो फिर समय ही समय है। तुम्हें अनित्य और पापमय सांसारिक कार्यों को करने के लिए समय है, उन्हें तुम रुचि के साथ करते हो, उनमें घुल मिल जाते हो और उनके पीछे रातदिन एक कर देते हो, किन्तु जो तुम्हारा वास्तविक स्वार्थ है, नित्य और पुण्य रूप है, उसके लिये तुम्हारे पास समय नहीं। यह बड़े आश्चर्य की बात है। औरों के कार्य के लिए तो फुरसत और अपने कार्य के लिये फुरसत नहीं, यह आश्चर्य ! शरीर की गुलामी के लिए फुरसत शरीर के भरण पोषण और विषय-सेवन के लिए अवकाश और अपने आत्मा की भलाई के लिए समय की कमी, यह आश्चर्य नहीं तो क्या है ? अभी तुम्हें दुनियां के धन्धे से फुरसत नहीं है, पर जब मौत परवाना लेकर आयगी तब अपने आप फुरसत मिल जायगी। कोई बहाना नहीं सुना जायगा। तब पछताओगे, रोओगे। पर 'फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।' यह मनुष्य जीवन एक मात्र तुम्हारे उद्धार का साधन है इसे यों ही खो दिया। बस, फिर क्या है ? अपनी इस भूल का प्रायश्चित दूसरे अनन्त जन्म धारण करके भी तुम नहीं कर सकोगे। चिन्तामणि के समुद्र में डूब जाने पर फिर क्या हो सकता है ? गया हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आता। इसलिए यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना भला चाहते हो तो आज ही और इसी क्षण सावधान हो जाओ और प्रतिज्ञा कर लो कि हम अन्यान्य दुनियवी आवश्यक कार्यों की तरह स्वाध्याय, सामायिक, आत्म चिंतन आदि में कुछ समय लगायेंगे। तुम कुटुम्ब की चिन्ता में फँसे हो, पर यह तुम्हारे आत्मा का भला नहीं कर सकता। तुम इसके भरण पोषण के लिए अन्यान्य अनुचित उपाय भी करते हो, पर इससे तुम्हारे पल्ले पाप के अतिरिक्त कुछ नहीं पड़ता। इसको छोड़ नहीं सकते तो इसके प्रति जो कुछ तुम्हारा कर्तव्य है वह करते रहो, अनर्थ न करो। तुम्हें महल मकानादि की चिन्ता बहुत है, पर सब यह यहां ही पड़े रह जायेंगे। जिस शरीर की गुलामी और रक्षा में तुम इतने लगे रहते हो वह भी तुम्हारा नहीं है। यदि तुम इस की गुलामी ही में लगे रहे तो अनर्थ हो जायगा। जरा मर्म को समझो। यह तुम्हें किसलिये प्राप्त हुआ है, तुम इसके प्राप्त होने का सच्चा लाभ कब उठा सकते हो? यह विचारो। तुम लक्ष्य-भ्रष्ट हो रहे हो। तुमने अपनी आत्मा को अपना नहीं माना। अपने भौतिक शरीर को अपना मान रखा है। यही महा अज्ञान है। ऐसे श्रद्धान से ही सब अनर्थों की सृष्टि हो रही है। निश्चित समझो, यह शरीर एक किराये की गाड़ी के समान है। अविश्वासी गाडी वाले को मांगे तब किराया न दिया जाय तो वह मुसाफिर से कहता है—'निकल बाहर'। उसी तरह यदि शरीर को किराया न चुकाया जाय, पानी न पिलाया जाय तो आत्मा से कहता है—'निकल बाहर'। भोजन न दिया जाय तो आत्मा से कहता है 'निकल बाहर'। अब कहना यह है कि गाड़ी के स्वामित्व का अभिमान दो प्रकार का होता है। एक तो गाड़ी का सईस गाड़ी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी बताता है और गाड़ी का रईस भी गाड़ी को अपनी कहता है। पर उन दोनों के कहने में बड़ा अन्तर है। गाड़ी के सईस का काम है गाड़ी-घोड़ों की सफाई आदि करना और रईस का काम है उसमें बैठकर अपनी अभीष्ट यात्रा को सिद्ध करना। रईस का मुख्य काम अपनी यात्रा तय करना है और सईस का मुख्य काम उसकी सफाई आदि करना है। जो लोग इस शरीर रूपी गाड़ी की केवल सफाई में ही लगे रहते हैं और इससे अपनी संसार-यात्रा को पूरी कर सिद्धि प्राप्त करना अपना मुख्य लक्ष्य नहीं समझते वे इस शरीर रूपी गाड़ी के सईस ही हैं। रईस तो वे तब होते जब कि इस शरीर को निर्वाहोपयोगी देकर इसके द्वारा मोक्ष के द्वार तक पहुंचने का प्रयत्न करते। बस, यही लक्ष्य-भ्रष्टता है। जिसके स्वामी बन कर जिसको गुलाम की तरह अपनी इच्छानुसार चलाना चाहिये था, अज्ञान वश उसी शरीर की गुलामी करने लग गये। उसके और उसके सम्बन्धियों के नचाये नाच नाचने लगे। अपने स्वार्थ का ध्यान ही नहीं रखा। पर याद रखो, इस तरह दूसरों के कार्यों में अपनी पूंजी समाप्त कर देने पर ऐसी किराये की गाड़ी भी दुबारा नहीं मिलेगी और इस संसार मार्ग के अनन्त क्लेशों को बार बार रो-रो कर सहना पड़ेगा। इसलिये जब तक आयु कर्म रूपी पूंजी तुम्हारे पास है तब तक यह मनुष्य शरीर रूपी उत्तम गाड़ी, जो तुम्हें अपने अभीष्ट स्थान तक ले जाने में समर्थ है, तुम्हारे पास है, तुम आराम के साथ इसके द्वारा अपनी यात्रा पूरी करलो। गाफिल रहे तो तुम तुम्हारी जानो। पुण्यवानों को ही ऐसी सामग्री मिलती है। जिनके ऐसा पुण्य नहीं होता उनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक दुर्गतियों के दुःख सहने पड़ते हैं। ऐसे शरीर की प्राप्ति के लिए स्वर्गों के इन्द्र भी तरसते हैं। उसी को पाकर तुम व्यर्थ खो रहे हो। धन्य है तुम्हारी बुद्धिमत्ता को। इस शरीर का पाना कोई बच्चों का खेल नहीं है। तुम आलस्य में समय बितादो और पाप-संचय में इसकी अवधि को समाप्त करके फिर आशा करो कि इस बार तो ऐसे ही चलने दो फिर अपना उद्धार कर लेंगे सो कभी न होगा।

यदि तुम इस पर्याय में इस शरीर और इस शरीर के सम्बन्धियों के निमित्त अनर्थ न करो, पाप न बटोरो और अपने आत्म-हित के शुभ कार्यों में लग जाओ तब तो यह मनुष्य का शरीर तुम्हें फिर भी प्राप्त हो सकता है। अन्यथा इसकी प्राप्ति सर्वथा दुर्लभ है। तुम्हारा वर्तमान कोई कार्य ऐसा नहीं दिखाई देता जिससे यह आशा की जा सके कि तुम्हें यह मनुष्य का शरीर पुनः प्राप्त होगा। तुम अपने पतन का कार्य कर रहे हो, इससे तुम्हें नीच योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। मनुष्य शरीर तो तुम्हें पुनः प्राप्त तब हो जब कि तुम अपने उत्थान का कार्य करो।

वाल्मीकि साधु बनने से पहले लुटेरे थे। उनका नाम था रत्नाकर। दिन-रात राहगीरों के पास जो कुछ उन्हें दिखाई देता उसे लिये बिना वे उनको कभी नही जाने देते। कहा जाता है कि एक दिन उस मार्ग से एक ऋषि जा रहे थे। उनके पास कमण्डलु और वीणा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उनको देख कर रत्नाकर (लुटेरे) ने कहा "ओ साधु कहां जा रहा है? पहले अपना यह सब सामान इधर सौंप जा। नहीं तो आगे नहीं जाने दूंगा"।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'इससे तुझे क्या लाभ होगा ? साधुओं को सताने से पाप लगेगा।'

"मेरा तो काम ही यही है। इधर से जो कोई आता है उसे लूटे बिना मैं नहीं जाने देता। मेरे लूट के माल को पाकर सारे कुटुम्बी प्रसन्न हो जाते हैं।"

"अनर्थ तो तू सारे कुटुम्ब के लिये करता है और पाप का फल तुझ अकेले को भोगना पड़ेगा।"

"नहीं, नहीं, मुझे क्यों, जब सारे मिलकर खाते हैं तो उसका पाप भी उन सभी को लगेगा।"

"नहीं, यह झूठ है। तू जरा जाकर तो पूछ क्या तेरे सारे कुटुम्बी इस पाप की सजा भोगने को तैयार हैं ?"

"हैं, तुम मुझे धोका देकर निकलना चाहते हो। मैं तुम्हें सब सामान लिये बिना न जाने दूंगा।"

'नहीं, मैं तुझे धोका कभी न दूंगा। तू जा कर पता तो चला, जांच तो कर कि तेरे किये हुए पाप का दण्ड भोगने में कौन२ साथी होने को तैयार हैं ?"

रत्नाकर ने जाकर घरवालों से पूछा तो उसके लाये हुए माल के पीछे मौज उड़ाने वाले सारे कुटुम्ब में से कोई भी उसके पाप का दण्ड भोगने को हामी नहीं भरने लगा। यह देखकर उसकी आंखें खुलीं और वह भी लुटेरापन छोड़ कर साधु बन गया।

इसी तरह प्रत्येक संसारी की आंखें खुलें तब काम चले। वह जो अनर्थ कर रहा है उसे अनर्थ समझे और उसके फल पर विचार करे तब काम चले। जब तक मनुष्य को अपने कार्य के औचित्यानौचित्य का विचार नहीं होता तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक वह कर्तव्य मार्ग पर नहीं आता और इसके बिना उसकी इष्ट सिद्धि नहीं होती।

बुद्धि अनुचित कार्यों के करने में प्रवृत्त न होकर जिन कार्यों को करने की आवश्यकता है उनमें ही लगे इसके लिए जैसे विचारों की आवश्यकता है उनको संक्षेप में पहले लिखा जा चुका है अब उन पर प्रश्नोत्तर रूप में विचार की पद्धति बताई जाती है।

मै कौन हूं ?

मैं शरीर आदि पर द्रव्यों से भिन्न शुद्धचैतन्य स्वरूप हूं।

मेरा क्या स्वरूप है, मुझ में कौन कौन से गुण हैं ?

शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन मेरा स्वरूप है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बल यह मेरे गुण हैं।

मैं यहां कहां से आया हूं और मुझे यहां क्या करना चाहिए ?

न मालूम नरक आदि किस दुःखमय पर्याय से मैं यहां आया हूं ?

मुझे इस पर्याय में रत्नत्रय की प्राप्ति करनी चाहिये, जिससे कि शुद्ध-स्वरूप की प्राप्ति हो।

मुझे यह पर्याय कैसे मिली और इसमें मैं अपना उद्धार कैसे कर सकता हूं ?

मुझे यह पर्याय पुराने किसी पुण्य के उदय से मिली है। यह आगामी का वीज है। इसमें मुझे अनर्थ न करके धर्म-साधन करना चाहिए। तभी मेरा उद्धार होगा और इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय के पाने का फल मिलेगा। यदि मैं पाप-संचय ही करता रहा तो न मालूम मुझे कैसी योनियों में कौन कौन से दुःख भोगने पड़ेंगे। मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधान हो जाऊं और आज से प्रत्येक कार्य सोच समझ कर करूं मुझसे ऐसा कोई कार्य न बन पड़े जो मेरे पदके अयोग्य या धर्म विरुद्ध हो।

यदि उक्त रीति से विचार प्रतिदिन करता रहे तो निश्चय ही मनुष्य अपने जीवन को सुधार सकता है।

ऐसे विचारों से अपने जीवन को सुधारने के लिए गृहस्थ को उचित है दो-तीन प्रश्न और उनके संक्षिप्त उत्तर लिखकर अपने रहने के स्थान पर टांक दे, जिन पर कि उसकी बार-बार दृष्टि पड़ती रहे। जैसे एक व्यक्ति ने यह लिखकर अपने स्थान पर लगाया:—

प्रश्न	उत्तर
मैं कौन हूं ?	मैं शुद्ध चेतन, सर्वज्ञ, वीतराग हूँ।
मेरा क्या कर्तव्य है ?	मैंने मनुष्य-शरीर पाया है। मनुष्य का कर्तव्य है कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करे।
मैं क्या कर रहा हूँ ?	अफसोस मैं क्या कर रहा हूं ! हाय मैं क्या कर रहा हूं !!

जिसको अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो और वर्तमान पर्याय का भी ज्ञान हो कि यह नाशवान है—हमेशा रहने वाली नहीं है। और यह भी जो जानता हो कि यह वर्तमान पर्याय आगामी पर्याय का बीज है, इसमें जैसे कर्म किये जायेंगे उन्हीं के अनुसार सुख दुःख आगे मिलेंगे, वह कभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनर्थ नहीं करेगा। उक्त बातों का बार बार स्मरण करते रहने से यदि किसी अनुचित कार्य के लिये उसका मन उद्यत भी होगा तो वह शीघ्र ही सावधान हो जायगा और अनर्थ के लिए आगे नहीं बढ़ेगा आत्मा को सर्वदा जागृत रखने के लिए ऐसे ही विचारों को बार बार सामने लाने की आवश्यकता है जिनसे कि आत्म-कल्याण सम्भव है।

आत्म-हित की मुख्य साधिका वैराग्य-भावना है। संसार से वैराग्य और आत्म-हित में प्रवृत्ति के लिए शास्त्रों में अनित्य आदि बारह भावनाओं के चिन्तन की अतीव आवश्यकता और महत्व बताया गया है। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण आदि करने का विधान भी इसीलिए है।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप की सिद्धि के लिए सामायिक से बढ़ कर और कोई सहज साधन नहीं है। पर आजकल जो सामायिक का ढंग देखा जाता है वह सन्तोष की वस्तु नहीं है। थोड़ी देर कुछ निश्चित विधि-विधान करके लोग समझ लेते हैं कि हमने सामायिक कर ली, इससे सिद्धि प्राप्त हो जायगी, पर कोरे विधि-विधान से आज तक किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं हुई और न अब होगी ही।

सामायिक हृदय की वस्तु है। बाह्य-क्रिया की अपेक्षा उसका हृदय से अधिक सम्बन्ध है। सामायिक की किसी क्रिया से यदि हृदय का मैल नहीं धुलता तो समझो अभी वास्तविक सामायिक में कमी है। फौरन अपनी त्रुटि को दूर करो और यथार्थ मार्ग को अपनाओ।

सामायिक की क्रिया करने वालों का भी आत्मोत्थान नहीं होता। इसका यही कारण है कि कुछ लोग सामायिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की आवश्यकता और उसका महत्व ठीक-ठीक न समझकर दूसरों की देखा देखी दुनियां के समक्ष अपने को धर्मात्मा प्रदर्शित करने के लिए सामायिक की कुछ बाह्य-क्रियाएँ तो करने लग जाते हैं और उसकी यथार्थता पर ध्यान नहीं देते, इससे उनकी सामायिक पाखण्ड बन जाती है। यथार्थ सामायिक के लिए आवश्यक है कि मनुष्य बाहर और भीतर एकसा हो। जो लोग ऊपर के कोट, कमीज आदि तो उजले पहन लेते हैं और भीतर मैला बनियान पहने रहते हैं उन्होंने उजलेपन को केवल प्रदर्शन की वस्तु समझा है। उनको न सफाई का महत्व विदित है और न मैलेपन से सचमुच घृणा ही हुई। यदि वे मैलेपन को घातक या स्वास्थ्य में बाधक समझते तो बाहर की सफाई की अपेक्षा पहले अन्तरंग की सफाई की ओर ध्यान देते। क्योंकि ऊपर के कपड़ों की अपेक्षा अन्दर के कपड़ों का शरीर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऊपर से उजले कपड़े पहनने वाला केवल इसी लिए सफाई पर ध्यान देता है कि यदि मैं उजले न पहनूंगा तो लोग मुझसे घृणा करेंगे, अपने पास बैठने न देंगे। जो लोग सामायिक के बाह्य विधि-विधान पर ही केवल निगाह रखते हैं उनका भी यही हाल है। वे समझते हैं अमुक क्रिया करने से लोग मुझे व्रती समझेंगे और यदि इसे मैं न करूँगा तो मुझे वह प्रतिष्ठा प्राप्त न होगी। गाने वाला देखता है—राग न बिगड़े (चाहे उपासना बिगड़ जाय)। इसी तरह अपनी पूजा प्रतिष्ठा के लिए सामायिक करने वाला भी यह विचार रखता है कि सामायिक की बाह्य क्रिया न बिगड़े। उसे अन्तरंग शुद्धि से विशेष प्रयोजन नहीं। यही सामायिक के सम्बन्ध में सबसे बड़ी गलती होती है, जिससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि सामायिक के लिए समय देने वाले और उसकी क्रियाओं में समय लगाने वाले भी उसका ठीक ठीक फल नहीं पाते। यदि ऐसी त्रुटियां दूर कर दी जावें तो कोई कारण नहीं कि सामायिक से आत्मोत्थान न हो।

श्री समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरंडश्रावकाचार में कहा है:—

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥

इसका अर्थ यह है कि सामायिक से पांचों व्रत परिपूर्ण बनते हैं। पांचों पापों के त्याग में जो कुछ कमी रह गई हो वह सामायिक से दूर हो जाती है। पर इस सामायिक को प्रतिदिन करे, उसका अभ्यास बढ़ावे, आलस्य न लावे, पूर्ण सावधानी रखे। यथोचित रीति से की गई सामायिक से पाँचों पापों के त्याग में कोई त्रुटि न रहेगी, वह महाव्रतों की कोटि तक पहुँच जायगा। ऐसा सामायिक कब किया जा सकता है, इसके लिए वे कहते हैं:—

व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्यामन्तरात्मविनिवृत्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥

अर्थात् जबतक शरीर की चेष्टा अन्य ओर से निवृत्त न हो, आरम्भ आदि कार्यों को न छोड़ा जाय और मन के सांसारिक संकल्प-विकल्प दूर न हों तब तक अन्तरात्मा में स्थिरता नहीं आ सकती। इसलिए आरम्भ परिग्रह का त्याग करके सामायिक में बैठे। नहीं तो यह मन बड़ा चंचल है। कहाँ का कहाँ क्षण भर में पहुंचाता है। वायु से भी शीघ्र गति होती है इसकी। इसको रोक रखने का तो एक ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाय है। इसके ठहरने के लिए आत्मा के अतिरिक्त कोई आश्रय ही न रहने दिया जाय। जैसे जहाज का पक्षी उड़कर इधर उधर जाना चाहे तो समुद्र में अन्य कोई आश्रय न मिलने से दूसरी जगह जाकर टिकाव नहीं पा सकता। उसे ठहरने के लिए अपनी उसी जगह वापिस आना पड़ेगा। उसी भाँति जब तक पर पदार्थों से महत्व नहीं हटाया जाता तब तक तो मन के घूमने के लिए अनन्त स्थान हैं। सामायिक के लिए बैठिए कभी घर के तेल-लून की चिन्ता होगी, कभी किसी से मिलने जाने की फिक्र होगी, कभी दूकान की बातें याद आ जावेंगी, सामायिक न होगी। किन्तु जब इन सब पदार्थों से महत्व हटा लिया जायगा, कम से कम सामायिक काल में इनका त्याग कर दिया जायगा, तो मन को इनकी ओर जाने का अवकाश नहीं मिलेगा तथा ममत्व हट जाने से जैसे दुनिया के अन्यान्य पदार्थों के बनाव बिगाड़ से हमें दुःख नहीं होता वैसे ही किसी अपनी वस्तु के बनाव-बिगाड़ के सम्बन्ध में भी हमें कोई चिन्ता नहीं होगी। परिणाम आर्त्त-रौद्र रूप न होंगे। संपूर्ण आरम्भ-परिग्रह का त्याग कर देने पर ही वह साम्यभाव प्राप्त होता है जिससे कि गृहस्थ भी यति के समान बन जाता है। जैसा कि श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखा है:—

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥

अर्थात् सामायिक के समय गृहस्थ भी मुनि के तुल्य (समकक्ष) बन जाता है, क्योंकि दोनों ही के उस समय

Ganesh.Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रह का त्याग होता है। केवल भिन्नता इतनी ही होती है कि गृहस्थ बाह्य में वस्त्र पहने रहता है इसलिए उस समय उसकी स्थिति ठीक वैसी ही कही जा सकती है जैसी कि किसी मुनि की कपड़े का उपसर्ग कर देने पर हो। अन्तरंग में उनमें कोई भेद नहीं होता।

गृहस्थ को ठीक-ठीक सामायिक करने का अवसर, उपवास या एकाशन के दिन मिल सकता है, जब कि वह घर से अपना सम्बन्ध हटा कर आत्म-शोधन के लिये तैयार होता है और आत्मा के सान्निध्य में रहने के लिए विशेष अवकाश प्राप्त करता हैं। प्रतिदिन गृह-जंजाल में फँसे हुए व्यक्ति के लिए स्थिरता का होना कठिन है। इसलिए उसके लिए यही उपयुक्त मार्ग है कि अहोरात्र में जब कभी वह स्थिरता का अवसर देखे तभी वह सामायिक करने में प्रवृत्त हो। यहां यह स्मरणीय है कि यदि गृहस्थ भी संसार में रहने की कला सीख ले तो फिर उसे हर कैसी स्थिति में भी सामायिक सिद्ध करने में बाधा न होगी। भरत जी घर में भी विरक्त थे इसलिए उनको ध्यान की सिद्धि में कुछ भी विलम्ब नहीं लगा। अन्तर्मुहूर्त्त में ही उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया और सब कर्मों का क्षय करके वे मोक्ष में चले गये। इसी तरह प्रत्येक गृहस्थ की स्थिति हो, वह घर में रहता हुआ भी, जल-कमलवत् उससे भिन्न रहे तो उसका सहज ही उद्धार हो सकता है। एक महात्मा कहता है:—नाव चाहे पानी में रहे, नाव में पानी न हो। मनुष्य चाहे संसार में रहे, मनुष्य के हृदय में संसार न हो।—यह बिल्कुल ठीक है। नाव में आने वाला पानी नाव को ले डूबता है, उसी प्रकार मनुष्य हृदय में रहने वाली संसार के पदार्थों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्च्छा भी मनुष्य के संसार में डूबने, संसार की यातनाओं के भोगते रहने का कारण बन जाती है। इसके रहते हुए उसकी स्थिति संसार के ऊपर या संसार के दुःखों से उन्मुक्त नहीं हो सकती। जिन्होंने इस रहस्य को समझ लिया है उनके लिए सामायिक की सिद्धि सहज है और जो इससे अनभिज्ञ हैं वे यदि विधिवत् सामायिक का अभ्यास करें तो थोड़े ही समय में इस रहस्य को समझने में समर्थ होंगे। क्योंकि सामायिक इस स्थिति का कार्य भी है और कारण भी। जब संसार के सब पदार्थों को भिन्न समझ कर, उनसे उपयोग हटाकर या उनके प्रति राग द्वेष छोड़कर अपने शुद्धा-त्मा-मात्र में रति की जाती है तब निश्चय या भाव सामायिक होती है और व्यवहार या द्रव्य सामायिक के जो कृत्य हैं उनसे संसार का स्वरूप समझने और पर पदार्थों में परत्व का अनुभव करके मोह हटाने का अभ्यास दृढ़ होता है। इसलिए निश्चय सामायिक तो सामायिक है ही, व्यवहार सामायिक की भी बहुत उपयोगिता है। क्योंकि वह भी पर-परया सिद्धि का कारण है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यवहार निश्चय का साधक बने तभी उसकी उपयोगिता है। केवल व्यवहार से कोई सिद्धि नहीं मिलती। इसीलिए यह पहले लिखा जा चुका है कि सामायिक की कोई क्रिया केवल दिखावे के लिए नहीं होनी चाहिएं, उसमें हृदय का योग और आत्म शुद्धि की भावना होनी चाहिए। नहीं तो वह केवल दम्भ, आत्म पतन का कारण मात्र होगी। क्योंकि दिखावे की चीज बाह्य होती है, उसे बाहरी लोग ही देखते हैं और उन्हीं पर बुरा असर होता है। आत्मा तो केवल उसका वह रूप देखता है जो हृदय में होता है। जब हृदय में साम्यभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की स्थापना नहीं होती, मन राग द्वेष के वशीभूत हुआ इधर उधर डोला करता है तो वह आत्म-दृष्टि से सामायिक कैसे मानी जा सकती है ?

आत्म--साधना या सामायिक में प्रवृत्त होने से पहले उसके प्रयोजन और परिपाटी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। आप जब आत्म - साधना में प्रवृत्त होना चाहते हैं तो पहले उस आदर्श को सामने लाइये, जिसने आत्म शुद्धि प्राप्त कर ली है। अपने चारों ओर उसका स्मरण कीजिए, उसके प्रति अपनी भावनाओं को निर्मल बनाइये। मन, वचन, काय की कुटिलता और दुष्प्रवृत्ति को दूर कर दीजिए, जिन कारणों से मन, वचन, काय की प्रवृत्ति में दोष आ सकता है उन्हें थोड़े समय के लिए त्याग दीजिए। अपनी साधना के समय उनसे अपना संवन्ध मत जोड़िए फिर आप राग द्वेष को हटाकर साम्यभाव का अवलम्बन कीजिए और उसमें दृढ़ रहिये और अपने किये हुए दुष्कृत्यों की आलोचना कीजिए। प्रमाद आदि के वशीभूत होकर जो कुछ बुराइयाँ उत्पन्न होगई हैं उनके लिए पश्चात्ताप कीजिए, उनके मिथ्या होने की वाँछा कीजिये। हर तरह से अपने से संभावित दोषों का विचार कर उन्हें दूर करने का प्रयत्न कीजिये। आगामी पाप त्याग के लिए भावना भाइए। और छोड़ी हुई वस्तुओं तथा विषयों में ला :सा मत रखिये इसके साथ थोड़ा और है कि जिन्होंने सब बुराइयों पर पूर्ण विजय प्राप्त करली है। जो पूर्ण वीतराग और निर्दोष हैं आत्म भाव पर पूर्ण अधिकार हो जाने से जिनमें अनन्त आत्मिक गुण प्रकट हुए हैं ऐसे बृषभादि वर्तमान चौवीस तीर्थंकर तथा भूत और भविष्यत काल की अपेक्षा से अनन्तानन्त तीर्थंकरों की भक्ति से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुति भी पढ़िए। तथा अरहंतादि पंच परम पद में स्थित किसी परमेष्ठी के निमित्त आत्म परिणाम की विशुद्धता से नमस्कारादि रूप विनय क्रिया या वंदना भी कीजिए। शरीर सम्बन्धी ममत्व परिणाम का बिल्कुल त्याग कर दीजिये, ऐसा करने से आपकी साधना अवश्य सफल होगी। दोष दूर हो जावेगें। आत्म-वृत्ति में दृढ़ता होगी। धीरता व गम्भीरता आजायगी। आलस्य और जड़ता का प्रभाव दूर होगा। और आ जायगी वह शक्ति जिससे आप सब कुछ करने में समर्थ होंगे।

उपर्युक्त मार्ग व्रती श्रावक के आगे बढ़ने का है। श्री समन्तभद्र स्वामी ने सामायिक प्रतिमा के वर्णन में लिखा है—

चतुरावर्तत्रितयश्चतुः प्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धास्त्रसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३६॥

चारों दिशाओं में तीन तीन आवर्त्त करने वाला, चार प्रणाम और कायोत्सर्ग करने वाला, बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह की चिन्ता से रहित जो मन, वचन, कार्य की शुद्धि सहित पद्मासन अथवा खड्गासनरूप स्थित होकर तीनों संध्या समय (प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल) वंदना करता है वह सामायिक प्रतिमा का धारी होता है।

इसका खुलासा यह है कि सामायिक में प्रवृत्त होने वाला मनुष्य पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके अपने हाथ लटका कर खड़ा होवे और नौ बार णमोकार मंत्र अपने मन में पढे। इसका तात्पर्य यह है कि पञ्च परमेष्ठी, जो अपना सच्चा आदर्श है, उसके प्रति मन वचन काय और कृत, कारित अनुमोदना नवकोटि से पूर्ण श्रद्धा प्रकट करे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्कार मंत्र पढ़ कर मस्तक भूमि में लगाकर प्रणाम *करे। फिर उसी दिशा में कायोत्सर्ग रूप खड़ा होकर नौ बार या तीन बार णमोकार-मंत्र पढ़ कर तीन आवर्त+और एक शिरोनति* करे। इसका भाव यह है कि उस दिशा में जितने वंदनीय तीर्थ, धर्मस्थान, अरहंत, साधु आदि हैं उनको मन, वचन, काय से नमस्कार करे। इसके बाद खड़ा २ हाथ लटकाये हुये अपने दाहिने ओर मुड़ जावे और उधर भी उसी प्रकार नौ बार या तीन बार णमोकार-मंत्र पढ़ कर तीन आवर्त्त और एक शिरोनति करे। इसी प्रकार शेष दोनों दिशाओं में भी करे। इसका भी वही उक्त प्रयोजन है। तत्पश्चात् जिधर पहले मुंह करके खड़ा हुआ था उधर ही मुंह करके बैठ जावे पद्मा-सन या अर्धपद्मासन (पल्यंकासन) जमा लेवे या कायो-त्सर्ग रूप खडा ही रहे।

इस विधि से अपने आदर्श के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के साथ ही अपने आसन में दृढता लावे। काष्ट-पाषाण आदि की अचल-मूर्ति के समान अंगोंपांगों में स्थिरता लाकर, किसी से वार्तालाप न करता हुआ, पंचेन्द्रिय के समस्त विषयों से मन को मोडकर समस्त चेतन व अचेतन पदार्थों से राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, स्नेह-वैरादि के परिणामों का त्याग करके

---

*अंगों को धरती से लगाकर मस्तक झुकाने को प्रणाम कहते हैं

+दोनों हाथों को जोड़कर अपने बायें से दाहिनी ओर घुमाने को आवर्त्त कहते हैं।

*आवर्त्त में जोडे हुए हाथों पर अपने मस्तक के झुकाने को शिरोनति कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक का अभ्यास बढ़ावे।❀

सामायिक प्रतिमा वालेकेलिए तो यह अनिवार्य ही है कि वह प्रात: मध्यान्ह और सायंकाल नियम से सामायिक में प्रवृत्त हो। जघन्य दो घड़ी, मध्यम चार घड़ी और उत्कृष्ट छह घड़ी सामायिक का काल है। यदि छह घड़ी सामायिक करना हो तो सूर्योदय के तीन घड़ी पहले से तीन घड़ी बाद तक मध्यान्ह के तीन घड़ी पहले से तीन घड़ी बाद तक, और सूर्यास्त के तीन घड़ी पहले से तीन घड़ी बाद तक सामायिक करे। यदि दो घड़ी ही सामायिक करना हो तो एक घड़ी पहले से एक घड़ी बाद तक सामायिक करे।

यदि समय की इस प्रकार पाबन्दी न हो सके और छह घड़ी से कम सामायिक करना हो तो ऐसा करे कि सूर्योदय मध्यान्ह व सायंकाल सामायिक में वितावे। यह भी न निभे तो उक्त छह छह घड़ी के समय में जब कभी कम से कम दो दो घड़ी सामायिक अवश्य करे। अर्ध-रात्रि को और अन्य

❀सामायिक करने वाला व्यक्ति सामायिक करते समय चाहे कैसे भी उपसर्ग-परिषहादि क्यों न आवें अपने योगसे विचलित न हो। सामायिक का सुयोग मिलना बहुत कठिन है और जब वह मिल गया है तो उसे कभी नही छोड़ना चाहिए। जितने समय के लिए कायोत्सर्ग कर लिया गया है, शरीर से ममत्व हटा दिया गया है और समताभाव धारण कर लिया गया है, उसमें स्थिर न रहना मनुष्य के मिथ्यात्व को सूचित करता है। उससे यही समझ में आता है कि इसमें आत्म-प्रेम जागृत नहीं हुआ है, नहीं तो वाह्य अवस्था या शरीर की स्थिति पर इसका इतना ध्यान कभी नहीं जाता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय में भी इच्छा हो तो सामायिक अवश्य करे।

जिन्होंने सामायिक का नियम नहीं लिया है वे भी प्रात:काल विस्तर से उठने पर और रात्रि को सोते समय या जब कभी अवकाश मिले अवश्य ही सामायिक करें। इसका लाभ स्वयं उन्हें विदित होने लगेगा।

सामायिक प्रारम्भ करने से पूर्व, समय की मर्यादा कर लेनी चाहिए कि मैं कम से कम इतने समय तक सामायिक में प्रवृत्त रहूंगा। और इसी के साथ उतने समय तक के लिए पांचों पापों का पूर्ण रीति से (नव कोटि से) अपने मर्यादित सभी स्थानों में त्याग देना चाहिये। निश्चित समय तक पापों का त्याग करके हृदय- द्धि के कार्य में प्रवृत्त होना ही सामायिक शिक्षाव्रत या सामायिक का अभ्यास करने वालों का आद्य कर्त्तव्य है।

प्रारंभिक अवस्था में हर कहीं चित्त का स्थिर हो सकना कठिन है। उपयोग इधर उधर बँटने लगता है। इसलिए कोई ऐसा स्थान सामायिक के लिए चुनना चाहिए जहाँ चित्त विशेष रूप से निश्चल रह सके। श्री समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है। :—

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥

अर्थात् जिस स्थान में चित्त में विक्षेप पैदा करने वाले कारणों का अभाव हो, वहुत असंयमी लोग जहां न आते हों, तिर्यंच पशु पक्षियों का संचार भी जहां बहुत कम हो, जो कोलाहल रहित हो, जहाँ सर्दी, गर्मी, वर्षा की बाधा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम हो ऐसे एकांत वन, सूने घर, चैत्यालय आदि में सामायिक का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

इस सामायिक को एक आफत नहीं समझना चाहिए। बल्कि बहुत ही प्रसन्नता और उत्साह के साथ इस कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

सामायिक के पूर्ण होने में ५ बाधाएं बताई गई हैं :—

वाक्कायमानसानाँ दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पंच भावेन ॥ (र. श्रा)

शरीर, वचन और मन का एकाग्र न होना, अर्थात् सामायिक साधन में न लगकर अन्यान्य कार्यों व विचारों में प्रवृत्त होना, हार्दिक उत्साह का न होना—जिस किसी प्रकार उस परिपाटी को पूर्ण करने मात्र का ध्यान रखना या किसी आवश्यक क्रिया-पाठ, कायोत्सर्ग आदि को भूल जाना सामायिक के अतिचार हैं। ऐसा होता रहे तो सामायिक पूर्ण नहीं होती।

यही सामायिक का अनुष्ठान करने से पहले ध्यान देने की बातें हैं। इन्हें अच्छी तरह समझ करके ही सामायिक की क्रियाओं में प्रवृत्त होना चाहिए। तभी उसके करने का उद्देश्य सिद्ध हो सकेगा। सामायिक की क्रियाओं के अर्थ पर ध्यान देने से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी।

मुनि के लिए सामायिक एक आवश्यक है। आवश्यक का अर्थ है—अवश्य करने का कार्य। जैसा कि अनगार-र्मामृत में कहा है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्वयाध्यादिवशेनापि क्रियतेऽक्षावशेन
आवश्यकमवश्यस्य कर्माहोरात्रिकं मुनेः ॥१६॥

अर्थात् चाहे व्याधि आदि ने ही क्यों न सता रखा हो, फिर भी इन्द्रियों के आधीन न होकर दिन व रात्रि में जिसे अवश्य करना चाहिए वह आवश्यक कहलाता है। मुनि के लिए अन्य कोई वस्तु आवश्यक नहीं है। सामायिक अर्थात् साम्यभाव की साधना और उसके परिकर चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग यह छह कर्म ही आवश्यक हैं।

गृहस्थ के आवश्यक मुनि के आवश्यकों से भिन्न हैं, किन्तु मुनिव्रत की शिक्षा रूप में उसके लिए भी सामायिक आवश्यक माना गया है और सामायिक के आवश्यक बन जाने पर उसे पूर्ण बनाने वाले चतुर्विंशतिस्तवन आदि परिकर तो अपने आप आ ही जाते हैं। अस्तु, आत्मशुद्धि के निमित्त समभाव की साधना सबके लिए आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह न समझकर प्रत्येक मुमुक्षु को सामायिक का प्रतिदिन अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

सामायिक शब्द के अनेक अर्थ हैं :—

समय शब्द का अर्थ है आत्मा और उसके धर्म को या जिससे आत्मधर्म की प्राप्ति हो, आत्मा के साथ एकीकरण हो उसे सामायिक कहते हैं:—

अथवा समय—शुद्धात्म–परिणति और तदर्थ क्रिया सामायिक।

अथवा समय=भले प्रकार गमन और तन्निमित्त क्रिया सामायिक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा=जीवन—मरण, लाभ—अलाभ, संयोग वियोग, इष्ट-अनिष्ट, सुख—दुःख, शत्रु-मित्र आदि में राग-द्वेष रहित होना कहलाता है सम, और इसी रूप होने को कहते हैं सामायिक।

अथवा समय=शास्त्र, द्वादशांग रूप शास्त्र की प्राप्ति उसकी श्रद्धा तथा भावना रूप परिणति का नाम है सामायिक।

अथवा साम्यभाव के निमित्त जो पाठ है उसका नाम भी सामायिक है।

ऐसे ही और भी अनेक अर्थ सामायिक शब्द के किये जा सकते हैं। पर उन सब में आत्म-शुद्धि या उसके साधनों की ही प्रधानता होगी। मूलाचार में श्री वट्टकेर स्वामी लिखते हैं:—

सम्मत्तणाणसंजमतवेहि जं तं पसत्थसमगमणम्।
समयं तु तं तु भणिदं तमेव सामाइयं जाणे ॥५१८॥

अर्थात् सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम और इन चारों रूप जीव की अवस्था को सामायिक कहते हैं—

सामायिक में क्या कर्तव्य है यह निम्न लिखित श्लोक से स्पष्ट होता है।

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्त्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥१॥

जहां सब चीजों में समता भाव हो अर्थात् जैसा मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हूं वैसे ही सब जीव हैं, कोई भी राग-द्वेष करने योग्य नहीं है ऐसा भाव हो, संयम अर्थात् इन्द्रिय विषय का परिहार तथा प्राणि-पीड़ा का परिहार हो, शुभ भावना अर्थात् पर का उपकार, वीतराग की भक्ति, जिन वाणी का अध्ययन, शुद्धात्म-स्वरूप का स्मरण, ध्यान, संसार से निवृत्त होने के परिणाम द्रव्यादि को शुभ कार्यों में लगाने आदि की भावना-बारम्बार विचार हो, आर्त्त और रौद्र इन दो अशुभ ध्यानों का परित्याग हो तब सामायिक व्रत होता है।

आप अपने हृदय को सफल बनाने की ओर ध्यान दीजिए। भावों की खेती हृदय में होती है। यदि हृदय में बुरे भावों का बीज है तो अच्छे भाव नही पनप सकेंगे। चतुर किसान का कर्तव्य है कि नया बीज बोने से पहले भूमि को ठीक करे, उसे बीज के पनपने के योग्य बनावे। क्रोध, मान, माया लोभ आदि ऐसे दुष्ट विकार हैं कि इनके रहते हुए भले विचारों की जड़ नहीं जमती इसलिए हृदय स्थल में सुन्दर भावों का अंकुर जमाने के लिए दुष्ट भावों को समूल उखाड़ डालिए।

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावनाएँ ऐसी हैं कि जिनको विधिवत् जीवन में उतारने पर हृदय का रूप बदल जाता है। उसमें क्रोधादि भाव और उनसे होने वाले हिंसादि पाप नहीं टिकने पाते।

मैत्री का अर्थ है सम-भाव। प्राणी मात्र को अपने समान समझना, उसे दुःख न पहुंचा कर उसके भले का विचार करना, यही सच्ची मैत्री है। जिसके हृदय में यथार्थ मैत्री-भाव की उत्पत्ति हुई है वह कभी किसी जीव को न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सतावेगा। न उसे धोखा देगा और न उसकी संपत्ति छीनेगा। अपने पास अनावश्यक परिग्रह का संग्रह कर वह दूसरों के सुख में बाधक भी न बनेगा। क्रोधादि का जन्म भी सच्चे मैत्री-भाव के न होने पर ही होता है। अब यह सहज ही समझा जा सकता है कि स्व-पर कल्याण के लिए प्राणी मात्र के प्रति मैत्री-भाव का कितना उपयोग है और वह कितना आवश्यक है।

दूसरी भावना है प्रमोद। अपने से अधिक गुणवानों को देखकर हृदय का खिल उठना, एक आन्तरिक उल्लास और सन्तोष का अनुभव होना मनुष्य को ऊँचा उठने में काफी सहायता देता है। साधारण लोग ऐसी भावनाओं का महत्व नहीं जानते। बल्कि पढ़े-लिखे लोगों में भी यह दुर्गुण देखा जाता है कि वे अपने से अधिक या अपने समकक्ष गुणवानों को देखकर जलने लगते हैं। इससे वे अपने मन में चाहे जो समझें, वास्तव में उनकी आत्मा का पतन हुए बिना नहीं रहता। यदि गुणों से सच्चा अनुराग हो तो गुणवानों से कभी ईर्ष्या नहीं की जा सकती। इसलिए यदि अपने में अधिकाधिक गुणों को जागृत करने की इच्छा है तो किसी भी गुणवान का दर्शन या सत्संग पाकर अपने आपको कृतकृत्य अनुभव कीजिए और उसके समक्ष विनम्र बनिये। अन्यथा ईर्ष्या, मान आदि आप का सर्वनाश कर देंगे।

कारुण्य का अर्थ है दया-भाव। किसी भी जीव को दुखी देखकर हृदय में दया का स्रोत फूट पड़ना कारुण्य भावना का काय है। प्रारम्भिक अवस्था में यदि कारुण्य भावना न हो तो धर्म की जड़ नहीं जम सकती। जिसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदय में दया नहीं, दूसरों के प्रति सहानुभूति नहीं, वह पाप करते हुए कभी नहीं हिचकिचावेगा। अन्धों - लूलों को मार्ग बताना और सहारा देना दूर, वह उन्हें मार्ग-भ्रष्ट कर और गड्ढे की ओर धकेल कर खुश होगा। पद-दलितों को उठाने की बजाय वह उन्हें ठुकरावेगा और उन पर अत्याचार करेगा। अनाथों और रोगियों की सेवा भी उससे न बन पड़ेगी। तब वह अपने पाप के भार को मनुष्य जन्म पाकर भी भारी ही बनावेगा, और पाप के भार से अत्यधिक दबे हुए मनुष्य के लिए उठ सकना और शीघ्र ही अपना कल्याण कर सकना सर्वथा असम्भव है। इसलिये पाप-पंक में फँसे हुए मनुष्य के उठने के लिये करुणा प्रारम्भ में सुन्दर सहारा है-यह समझ कर कारुण्य को कभी नहीं भुलाना चाहिये।

जीवन में माध्यस्थ भाव का होना भी आवश्यक है। बहुत से प्राणी ऐसे होते हैं कि जब कभी उनके साथ हमारे विचारों का मेल नहीं खाता तब उनके प्रति अनुराग तो हो ही कैसे सकता है ? और द्वेष तो बुरा है ही। ऐसी स्थिति में उनके प्रति माध्यस्थ भाव होना चाहिये। पुत्र, पिता का कहना नहीं मानता, स्त्री, पति के विरुद्ध चलती है, भाई-भाई में नहीं बनती, सतर्क रहने और प्रयत्न करने पर भी उनका पारस्परिक व्यवहार आशा के विरुद्ध है तो ऐसी स्थिति में उन्हें द्वन्द्व ठानने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक प्राणी के भिन्न भिन्न कर्म हैं। उनके अनुसार उनके भिन्न भिन्न स्वभाव और कार्य हैं। किसी भी जीव को कोई अपनी ही इच्छानुसार परिणमाना चाहे तो यह बहुत कम संभव है। यही विचार कर विपरीत वृत्तिवालों पर रुष्ट होने की आवश्यकता नहीं। उनको सुमार्ग पर लाने का प्रयत्न करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। पूर्ण प्रयत्न करने पर उसका कोई फल नहीं मिलता या विपरीत फल मिलता है तो ऐसे प्रसंग में बुद्धिमान को माध्यस्थ का ही अवलम्बन करना चाहिये। अन्यथा लाभ के बजाय अनिष्ट ही होगा।

उक्त चारों भावनाएं मनुष्य को पापों से बचाती हैं और स्व-पर-कल्याण के मार्ग में ले जाती हैं। जो इनका अभ्यास करेगा उसकी सामायिक सफल होगी। वह उतरोत्तर अपनी आत्मा का उत्थान करता जायगा।

इसके अतिरिक्त य़ भी स्मरण रखना चाहिए कि बुरे विचारों को दूर करने और अच्छे भावों को हृदय में स्थान देने के लिए एक ही मार्ग नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए स्वतंत्र मार्ग बनाना चाहिये। इसका कारण यह है कि सब मनुष्यों में अवगुण एक से नहीं होते, आदतें और परिस्थितियां भी प्रायः भिन्न २ होती हैं तब उन सब के लिए एक ही मार्ग कैसे निर्धारित किया जा सकता है? किसी में क्रूरता और क्रोध प्रबल है तो वह उन्हें हटाने का विशेष प्रयत्न करे, क्षमा सीखे। किसी में झूठ बोलने और व्यर्थ अधिक बोलने की आदत है तो वह पहले उस पर ध्यान दे, मौन रखा करे, बहुत कम बोले। कोई अभिमान वश अपना अनिष्ट करता है या मायाचारी चालाकी, धोखे बाजी से अपना रूप बदले हुए है तो उसे चाहिये कि अपने को विनम्र बनाये और छिपाना छोड़ दे। यही बात अन्य सब दुर्गुणों के सम्बन्ध में भी समझिए।

बहुत बार किसी दुर्गुण को हटाने की इच्छा रखते हुए भी मनुष्य उसे सहसा नहीं हटा पाता। इसका कारण यह है कि वह दुर्गुण उसकी आदत बना हुआ है, उसका संस्कार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तस्थल में पूरी जड़ जमाए हुए हैं। ऊपर से हटा देने पर भी वह बार २ उद्भूत हो उठता है। पर इसके लिए घबराने या निराश होने की आवश्यकता नहीं। अभ्यास, प्रयत्न और सावधानी ऐसी चीजें हैं कि इनसे चाहे सो किया जा सकता है। कितनी ही बड़ी बुराई क्यों न हो यदि उसे हटाने का प्रयत्न सोच विचार कर निरन्तर चालू रखा जाय तो एक समय वह समूल हटकर ही रहेगी। जो जितना बलिष्ठ है मन पर जिसका जितना अधिक प्रभुत्व है, वह उतनी ही जल्दी बुराइयों को उखाड़ने में समर्थ होगा। जिसकी मानसिक शक्ति कमजोर है उसे देर लगेगी, पर निरन्तर अभ्यास करते रहने पर उसे भी सफलता अवश्य मिलेगी। शुभ संकल्प और बार २ जागृत होने से उसकी शक्ति भी बढ़ेगी और फिर दुर्भावना हृदय में स्थान न पा सकेगी। यह दैवी और राक्षसी युद्ध है। जिस सेना को पोषक तत्त्व खूब मिलेगा और अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होगी वही दूसरी को दबा देगी। संसार के मोहजाल में फँसे हुए प्राणियों का समुदाय राक्षसी सेना-दुर्भावना के अनुकूल है इसलिए उसकी विजय होती रहती है। यदि आध्यात्मिक और कर्त्तव्य-निष्ठ ज्ञानी पुरुषों की संगति की जाय और बार-बार संभलकर दैवी-शक्तियों-शुभ और शुद्ध भावनाओं को उत्तेजित किया जाय तो उनकी भी विजय होने में कोई सन्देह नहीं। राक्षसी शक्तियों की विजय होने से संसार में उपद्रव फैलते हैं, कोई सुखी नहीं रहने पाता, अपने आश्रय दाता का भी वे सर्वनाश कर डालती हैं। किन्तु दैवी शक्तियों का साम्राज्य होने पर सर्वत्र शांति छा जाती है—किसी को दुःख नहीं पहुंचता सबका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्ग प्रशस्त हो जाता है। कर्त्तव्य-निष्ठ रहता हुआ प्रत्येक प्राणी अपना कल्याण कर सकता है।

प्रारम्भ ही में सब अवगुणों को एक साथ हटा सकना बड़ा मुश्किल है। एक साथ बुराइयों को पूर्णतः छोड़ देने और फिर उसमें दृढ़ रहने की सामर्थ्य हर एक व्यक्ति में नहीं होती। इसलिये जो अपने में पूर्ण सामर्थ्य न देखे उसका कर्त्तव्य है कि वह अपने में पाए जाने वाले सब अवगुणों की एक सूची बनाले। ध्यान सभी को छोड़ने पर रखे, पर ५-७ दिन तक एक अवगुण के तर्क पर बिशेष ध्यान रखे। इतना सतर्क रहे कि अपने जीवन में वह बुराई उन दिनों में बिल्कुल भी न आने पावे। सच्चे हृदय से किये गये इस त्याग और सावधानी का भविष्य में यह परिणाम होगा कि जीवन में पहले जैसे वह अवगुण स्वभाव बना हुआ था वैसे आगे के जीवन में उसका त्याग स्वभाव बनने लगेगा, उसके उत्पन्न होने के समय में आत्मा पहिले की अपेक्षा उस बुरे कर्म से दृढ़ता के साथ अपने को रोकने लगेगा। इसी तरह भिन्न २ बुराइयों का अभ्यास आगे२ चालू रखने से उनके त्याग के संस्कार जम जावेंगे और जीवन में विशुद्धता आ जावेगी। हां, नवीन नवीन बुराइयों के त्याग को दृढ़ करने के दिनों में यह न हो कि छोड़ी हुई बुराइयों का फिर विशेष आक्रमण होने लगे या अवशेष बुराइयों पर ध्यान ही न जाय यह तो उनके त्याग की दृढ़ता के अभ्यास के लिए एक मार्ग बताया गया है। उद्देश्य और संकल्प तो सभी बुराइयों को दूर करने का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक में समय लगाकर यह सब काम किया जा सकता है इसीलिये जीवन-सुधार के लिये उसका महत्व है। व्रतियों के लिये सामायिक अनिवार्य रखा गया है इसका भी यही कारण है कि जब तक वे अपनी बुराइयों की आलोचना करके अपने त्याग को दृढ़ न बनावें तब तक उनका त्याग थोथा है, उसमें पोल रहे बिना नहीं रह सकती। यदि कोई व्रत-कोटि में आगे बढ़ना चाहे तो उसे नियमित सामायिक करनी पड़ेगी। दिन में तीन बार-प्रातः मध्यान्ह और सायं-काल--अपनी स्थिति को संभालनी होगी।

जो बनिया अपनी स्थिति को संभालता रहता है-सोच समझ कर व्यापार करता है और प्रतिदिन अपनी पूंजी के घटने बढ़ने का हिसाब लगा लेता है, समय समय पर अपनी दूकान के सारे कार्य की देख-भाल करके अपने हानि-लाभ का लेखा लेता रहता है वह बहुत शीघ्र अपने व्यापार को चमका लेता है, अपार लाभ उठाता है। इसी भांति आत्म-साधना भी एक व्यापार है। इसमें लाभ उठाना चाहे तो सामायिक में प्रवृत्त होने वाला व्यक्ति अपनी आत्मिक स्थिति को संभाले। सामायिक में बैठकर यह देखे कि मैंने अपने आत्मा की कितनी उन्नति की? मेरे रागद्वेष पहले की अपेक्षा कितने कम हुए? संसार, शरीर व भोगों के प्रति मेरे कितनी आसक्ति कम हुई? मुझसे आज कोई पाप तो नहीं बन आया? मैंने आज क्या क्या काम किये? उनमें कितने मेरे योग्य थे और कितने मेरे अयोग्य? मैंने आज अपने आत्मा के हित के लिए क्या किया? शरीर सम्बन्धी कार्यों में कितना समय लगाया और आत्म-हित के कार्यों में कितना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय लगाया ? देवदर्शन, पूजन, स्वाध्याय, धर्म--चर्चा, ध्यान, सत्पात्र-दान, सत्संगति आदि शुभ कार्यों में कितने समय का सदुपयोग किया और विकथा, कषाय, इन्द्रिय-विषय, निद्रा आदि के वशीभूत होकर कितना समय व्यर्थ खोया ? कितने कार्य मैंने सावधानी से किये और कितने प्रमाद के वशीभूत होकर। मैं प्रयत्न करता तो अपने उद्धार के लिए आज और क्या क्या कर सकता था।

उक्त रीति से आवश्यक बातों पर विचार करके अपने आत्मा की उन्नति व अवनति देखे। जो कार्य हानि का बन गया हो उसके लिए अच्छे व्यापारी की तरह पश्चात्ताप करे–मुझसे अज्ञान या प्रमाद आदि के वश जो यह अनुचित कार्य हो गया सो बहुत ही बुरा हुआ। हे भगवन्! मेरा यह अपराध क्षमा हो। आगे मैं बहुत ही सावधानी रखूंगा। आगे कभी ऐसा न हो इसके लिए पूर्ण ध्यान रखूँगा। सार यह है कि जो निन्द्य कर्म बन गया हो उसका विचार कर उसे हटाने का पूर्ण प्रयत्न करे।

इसी रीति से अपनी स्थिति को संभालने वाला साधक अवश्य ही सफलता प्राप्त करता है। उसकी आत्मा का पतन कभी नहीं होता और वह उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।

साधक को चाहिए कि अपने कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रखने वाले कुछ पाठ, भजन आदि का मनन भी ऐसे समय में किया करे, कुछ ऐसी भावना भी भावे जिससे कि संसार, शरीर और भोगों का स्वरूप विदित हो और उनसे रागादि भाव दूर होकर शुद्धात्मा में स्थित हो। संसार के स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विषय में श्री समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं:—

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अर्थात् यह संसार, जिसमें कि मैं मौजूद हूं, अशरण है, अशुभ है, अनित्य है, दुःख का कारण है, आत्मा का स्वरूप नहीं है। मोक्ष इससे विपरीत है वह शरण, शुभ, नित्य, सुख और आत्म स्वरूप है यह बात सामायिक में विचारे।

यह सँसार अशरण है

शरण का अर्थ है सहारा देने वाला, रक्षा करने वाला। चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए मुझे अनन्तानन्त काल व्यतीत हो गया। समस्त पर्यायों में भूख, प्यास, ठंड, गर्मी, मारन, ताड़न आदि की वेदना सहते हुए, मुझे कोई बचाने वाला नहीं मिला। काल के मुंह में जाते हुए प्राणी का संसार में कोई बचाने वाला नहीं —

दल-बल देई-देवता, मात-पिता परिवार।
मरती विरियां जीव को, कोई न राखनहार॥

लोहमई कोट केई कोटन की ओट करौ,
कांगुरेन तोप रोपि राखौ पट भेरिकै।
इन्द्रचन्द्र चौकायत चौकस है चौकी देहु,
चतुरंग चमू चहूं ओर रहौ घेरिकै॥
तहाँ एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलौ मति कोऊ जो बुलावै नाम टेरिकै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे परपंच-पांति रचौ क्यों न भाँति-भाँति,
कैसे हूं न छोरै जम देख्यो हम हेरिकैं। (भूधरदास)

हे आत्मन्! यह तुम्हारी कितनी बुरी आदत है कि तुम स्वार्थियों से भरे हुए इस संसार में किसी दूसरे को अपना शरण ढूंढने का निरर्थक प्रयत्न करते हो। हमेशा तुम्हें कोई न कोई सहारा चाहिए ऐसा तुम सोचते हो। तुम्हें अपनी अनन्त शक्ति पर विश्वास नहीं। अन्यथा तुम दूसरों में शरणत्व-बुद्धि करने का अपराध क्यों करते? याद रखो, यह शरणत्व बुद्धि की भावना तुम्हें निर्वीर्य बना देती है। तुम्हारा धैर्य नष्ट हो जाता है और दुःखों पर विजय पाने की जो तुम में महाशक्ति विद्यमान है वह भी आवृत हो जाती है। जो निश्चय दृष्टि से तीन लोक का धनी है वह किसी शरण को ढूंढे-यह अत्यन्त उपहास जनक बात है। यह कहना कि मेरा कोई सहारा नहीं है, मैं निर्बल हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता अपने पुरुषत्व का मजाक उड़ाना है। वास्तव में तेरा और कोई कभी शरण नहीं हो सकता। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा है कि औरों की क्या बात, अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म-यह चार चरणपद भी यथार्थ में आत्मा के शरण नहीं हैं। इनको व्यवहार से शरण कहा जा सकता है, निश्चय से तो अपना आत्मा ही शरण है।

यह जगत् अशुभ है.

इस जगत में कोई रमा रहे तो उसका कभी भला न होगा। जगत में आसक्ति के भाव जीव के बन्ध के कारण हैं। बन्ध चाहे सुन्दर हो चाहे असुन्दर, उसके रहते हुए कभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ति नहीं मिल सकती। इन्द्र, चक्रवर्ती, अहमिन्द्र, सर्वार्थसिद्धि आदि का पुण्य पद भी इस दृष्टि से अशुभ ही है।

क्षमा, शान्ति, सन्तोष, दया, सहानुभूति आदि आत्मा की शुभ वृत्तियां हैं। जगत इनसे उल्टा है। इसलिए वह भी अशुभ रूप है। संसार के इस अशुभ रूप को बदलने के लिये क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए।

यह संसार अनित्य है

यहां कोई पदार्थ नित्य 'हमेशा एक-सा रहने वाला) नहीं। जो उत्पन्न हुआ है उसका नाश होकर ही रहेगा। एक पर्याय की उत्पत्ति के साथ ही उसका नाश भी प्रारम्भ हो जाता है। सब पदार्थ प्रतिक्षण अपना रूप बदल रहे हैं। हम सब जन्म के समय से ही मृत्यु की ओर जा रहे हैं। हमारा आवीचि मरण प्रति समय हो रहा है। जिसे हम 'मृत्यु' कहते हैं वह तो उसका स्थूल रूप है। वस्तुतः हमारी मृत्यु उससे पहले ही हो चुकती है। कोई दीर्घजीवी हो तो भी उसकी मृत्यु अवश्य होगी। जीवन का तनिक भी भरोसा नहीं। अभी आगे के क्षण में ही श्वास आवे या न आवे।

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी बार॥

आयु के निषेक पूरे होने पर कोई एक क्षण भी नहीं बचाया जा सकता और उससे पहले भी जीवित रहने का कोई निश्चय नहीं। इस जीवन की अनित्यता के सैकड़ों उदा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरण प्रतिदिन हमारे सामने आते हैं। हम उनसे कोई पाठ नहीं सीखते। राजा सभा में बैठे हुए भगवान आदिनाथ के सामने नीलांजना अप्सरा नाच रही थी। वह नाचती २ ही विलुप्त हो गई। वह घटना देखकर भगवान आदीश्वर पर तुरन्त संसार की अनित्यता का असर हो गया। वे उसी समय संसार से विरक्त होकर अपने उद्धार में तत्पर हो गये किन्तु हम ऐसी घटनाओं पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते। देखते हुए भी अन्धे बने हुए हैं और सब कुछ जानकर भी अज्ञानियों की सी चेष्टा में लगे हुए हैं। पं० भूधरदास जी ने क्या ही अच्छा कहा है:—

जग में जीवन थोरा, रे अज्ञान जागि ॥टेक॥
जनम ताड़ तरुतैं पड़ै, फल संसारी जीव।
मौत महा में आय है, और न ठौर सदीव ॥१॥
गिरि-सिर दिवला जोइया, चहुं दिशि बाजै पौन।
बलत अचम्भा मानिया, बुझत अचम्भा कौन ॥२॥
जो छिन जाय सो आयु में, निशि दिन ढूकै काल।
बाँधि सकै तो है भला, पानी पहिली पाल ॥३॥
मनुष-देह दुर्लभ्य है, मति चूकै यह दाव।
'भूधर' राजुल-कंत की, शरण सिताबी आय ॥४॥

सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत ही सुन्दर था। स्वर्ग में भी उसकी सुन्दरता की प्रशंसा होने लगी। देवों को यह अभिमान था कि भूतल पर हम से सुन्दर कोई हो ही नहीं सकता। किन्तु जब किसी देव ने उसे आकर देखा तो वस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका सौन्दर्य देवों से भी विशिष्ट जान पड़ा। देव ने उसकी बहुत प्रशंसा की। चक्रवर्ती देव के मुंह से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर फूला न समाया। जिस समय देव ने उसे देखा था उस समय खेल के कारण उसका शरीर धूल धूसरित हो रहा था, फिर भी अतीव सुन्दर जान पड़ता था। और भी अधिक प्रशंसा पाने के लिए चक्रवर्ती ने कहा अभी तुमने क्या देखा है? जरा मुझे स्नान करके आभूषित हो जाने दो, पीछे देखना मेरा सौन्दर्य! ज्योंही चक्रवर्ती सुसज्जित होकर राज-सिंहासन पर बैठा और देव से कहने लगा कि बतलाओ अब कैसा है? त्योंही देव ने सिर हिला दिया नहीं, अब वैसा नहीं है। चक्रवर्ती को यह अभिमान था कि सुसज्जित हो जाने पर मैं और भी सुन्दर लगूंगा, पर वह तो क्षणिक वस्तु थी। जो पहले समय में सौन्दर्य था वह आगे के समय में कैसे रह सकता था? मनुष्य की उस पर दृष्टि न जावे तो भी देव तो उसे पहिचान ही सकता था। परिवर्तन तो अवश्यंभावी है, चाहे थोड़ा ही हो पर प्रतिक्षण वस्तु में होता अवश्य है। इसी खयाल से किसी ने अच्छी शिक्षा दी है:—

सुनरे चेतन जग में जीवन स्वप्न की सी बात है।
अंजुली का नीर जैसे वृक्ष का जिमि पात है। टेक।
रूप-धन बल-ज्ञान-कुल का तू कभी मत मान कर।
चार दिन की चांदनी औ फिर अँधेरी रात है। १।

अतः परिवर्तन को सुनिश्चित समझकर संसार की किसी भी वस्तु का अभिमान न करना चाहिए। नश्वर और क्षणिक वस्तु का क्या अभिमान?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गरव नहिं कीजै रे, ऐ नर निपट गँवार ॥टेक॥

झूँठी काया झूठी माया, छाया ज्यों लखि लीजैरे ॥गरव॥
कै छिन साँझ सुहागरु जीवन, कै दिन जग में जीजैरे ॥ग॥
बेगा चेत विलम्ब तजो नर, बन्ध बढै तिथि छीजैरे ॥ग॥
'भूधर' पल-पल हो है भारी, ज्यों ज्यों कमरी भीजैरे ॥ग.॥

अत्यन्त रूपशाली तत्काल कोढ़ी बन सकता है। ज्ञानाभिमानी दिमाग बिगड़ जाने से तुरन्त पागल बन सकता है। बड़े से बड़ा वैभवशाली सम्राट एक दिन राह का भिखारी बनकर दर-दर भीख मांग सकता है। कुछ पता नहीं। संसार का तमाशा विचित्र है।

वे कोई अजब तमासा, देख्या बीच जहान वे, जोर
तमासा सुपने कासा ॥ टेक ॥

एकों के घर मंगल गावैं, पूगी मन की आसा।
एक वियोग भरे बहु रोवैं, भरि भरि नैन निरासा ॥१॥

तेज तुरँगनि पै चढि चलते, पहिरैं मलमल खासा।
रंक भये नागे अति डोलैं, ना कोई देय दिलासा ॥२॥

तरकैं राज तखत पर बैठा, था खुशवक्त खुलासा।
ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना वासा ॥३॥

तन धन अथिर निहायत जगमें, पानी माहि पतासा।
'भूधर' इनका गरव करैं जे, फिर तिनका जनमासा ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार की कोई भी स्थिति और कोई भी भोगोपभोग की सामग्री स्थायी नहीं, पुण्य-पाप के उदय से अच्छी बुरी या सुख व दुःख देने वाली सामग्री का संयोग होता है और उसी के उदयानुसार अपना फल देकर थोड़े समय के बाद वह सब विलुप्त हो जाती है। इसलिये किसी भी अनुकूल फल देनें वाले पदार्थ को पाकर न तो कभी हर्ष से इतराना चाहिए और न किसी प्रतिकूल फल देने वाले पदार्थ का संयोग होने पर विषाद ही करना चाहिए। वल्कि उसकी अनित्यता पर दृष्टि देना चाहिए, जिससे हर्ष व विषाद न हो, अनित्यता की भावना रखने से किसी निकट से निकट प्रेमी की मृत्यु होने पर या अपना सर्व नाश देखकर भी दुःख न होगा। दुख तो स्थिति को न समझने से होता है। जब महल-मकान, धन, यौवन, स्त्री-पुत्रादि स्वजन व परिजन, कोई भी स्थिति या किसी भी प्राणी का जीवन नित्य नहीं है, नष्ट होने वाला ही है तो उसका नाश देखकर व्यर्थ दुखी क्यों होना ? संयोग के साथ में वियोग लगा हुआ है तब उससे क्यों घबराना ? संसार में जिसे नष्ट होना है वह नष्ट होवे और अभी अपनी स्थिति पूरी करनी है वह उसे पूरा करता रहे इसमें हर्ष विषाद की कोई बात नहीं। क्षणिक वस्तु का अभिमान तो और भी बुरा है। यह अपने आपको भूला है।

मनुष्य का जीवन अथाह सागर में एक विन्दु के समान तुच्छ है। और संसार में इसकी स्थिति समुद्र की चंचल लहरों पर खेलने वाले एक तिनके के समान अस्थिर है। फिर भी मनुष्य के अभिमान का पारावार नहीं। इसमें अज्ञानी पशु-पक्षियों से भी अधिक अहंकार पाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह अपनी तुच्छ से तुच्छ समृद्धि पर अपने आपको भूल कर औरों का अपमान करने और उन्हें पद-दलित करने को तत्पर हो जाता है। सहानुभूति रहित होकर अनाथों गरीबों और अपाहिजों का तिरस्कार करते हुए इसे लज्जा का अनुभव नहीं होता। इस पर एक कवि ने कहा है:—

सागर में तिनका है बहता।
उछल रहा है लहरों के बल मैं हूं मैं हूं कहता॥

इस तरंग में मोर फिरते बड़ पीपल अभिमानी।
उनकी कथा जानकर भी यह बना हुआ अज्ञानी॥

अपने को है बड़ा समझता, यह इसकी नादानी।
धीरे धीरे गला रहा है इसको खारा पानी॥

धक्के खाकर भी इतराता, ऐसा मद में फूला।
मैं हूं कौन, कौन है सागर, इसको बिलकुल भूला।

धोखे ही धोखे में मित्रों, अपने को खोवेगा।
जिस गोदी में उछल रहा है, उसमें ही सोवेगा॥

उचक उचक नभ के तारों को छुआ चाहता है यह।
कुछ न पूछिए क्या जाने क्या, हुआ चाहता है यह॥

लहरों का बल पाकर जैसे तिनका उछलता है वैसे ही कर्मोदय का बल पाकर अहंकार में अपने आपको भूलने वाला प्राणी यह नहीं सोचता कि इस संसार समुद्र में बड़ों बड़ों ही की नहीं चली तो मेरी क्या गिनती है? इस अभिमान से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा कितना नाश हो रहा है ? यदि मैं क्षणिक सम्पत्ति का अभिमान न करके विनम्र होकर चलूं तो मेरा जीवन कितना सुन्दर, कितना उपयोगी और कितना सफल हो सकता है ? इस अन्धे को कुछ विचार नहीं बार २ धक्के खाता है, फिर भी इतराता है, होश नहीं सभालता। जीवन में बार २ दुःखों के धक्के पड़ते हैं—कभी कोई प्यारा कुटुम्बी मर जाता है; कभी अपना शरीर रोगी हो जाता है, सुन्दर शरीर में चेचक निकल आती है, आँखें फूट जाती हैं, वह सामर्थ्य नहीं रहती कभी धन संपत्ति सब चले जाते हैं, अधिकार छिन जाते हैं, कुल में कलंक लग जाता है, फिर भी ऐंठता रहता है। शरीर आदि की अनित्यताका अनुभव कर उनसे ममत्व नहीं हटाता, धक्के खाना चिरकाल से इसकी आदत बनी हुई है। यह तो कभी सोचता ही नहीं कि इस अनन्त सागर में मेरी स्थिति ही क्या है ? मुझे एक अवसर मिला है उससे मैं लाभ उठा लूं। इन चंचल लहरों पर नाचने वाले मुझ जैसे हजारों मेरे सामने हो इस अथाह सागर में विलीन होगये, फिर न मालूम किस क्षण मेरी भी वही गति हो सकती है। पर आश्चर्य ! यह देखना और सोचना किसका ? यह तो आंखें होते हुए भी अन्धा बना हुआ है, अपना आंखें खोलता ही नहीं। बल्कि यह तो उचक-उचक कर आकाश के तारे तोड़ना चाहता है। ऐंठ में भर-भर दूसरों को नीचा दिखाना, उनके अधिकारों को छीनना और उन पर शासन करना चाहता है। जहाँ तक इसकी पहुँच नहीं है उन कामों को भी कर लेने के लिए इसकी बड़ी बड़ी आशाएं हैं। न मालूम क्षणिक जीवन में ही क्या २ करना चाहता है ? पर यह कैसा भ्रम ! यह अपने आपको ही भूले हुए हैं, अपने अनिष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की ही इसे चिन्ता नहीं। धोखे ही धोखे में इसकी सत्ता मिट जायगी, जान चली जायगी और यह कुछ न कर सकेगा।

यह माना कि कल का दिन उगेगा, लेकिन हमारे लिए भी उगेगा यह निश्चित नहीं। फिर हम क्यों अनित्य वस्तुओं के अभिमान में फूले हुए हैं और अपने आपको भूले हुए हैं। अनित्य शरीरादि का मोह छोड़कर नित्य आत्मा से हमें प्रेम करना चाहिए, उसके उद्धार में लगना चाहिए। धिक्कार है हमें अपनी मूर्खता पर, जो सांसारिक कार्यों में शीघ्रता करते हैं। यदि लड़के लड़की का विवाह आदि करना हो तो बहुत उतावले हो जाते हैं कि आज ही हो जाय किन्तु आत्म-साधना की ओर ध्यान ही नहीं देते।

यह संसार दुःखात्म है।

इस संसार में कोई सुखी नहीं। रंक भी दुःखी, राजा भी दुःखी। बड़े से बड़े सम्राट् चक्रवर्ती को भी संसार में पूर्ण सुखी नहीं देखा जाता। किसी को किसी बात का दुःख है और किसी को किसी बात का। किसी के बाल-बच्चे हैं पर पास में धन नहीं है, वह उनको खिलाने-पिलाने के लिए ही काफी चिन्तित है, भीख तक मांगता है। एक ओर हम यह भी देखते हैं कि राजरानी के बालक नहीं है। वह पर्याप्त वैभव होने पर भी बच्चे के बिना दुःखी है। भिखारिन की गोद में बच्चे को देखकर वह उसे सुखी समझती है और अपना जन्म निरर्थक समझती है। हो सकता है कि इन्द्राणी के पुत्र नहीं होता इसीसे वह अपने उस दुःख की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांति के लिए जब भगवान का जन्म होता है तब इन्द्र के साथ उन्हें खिलाने के लिए आती हो और इन्द्र भी भगवान के बाल रूप-दर्शन से अपने आपको तृप्त करने के लिए हजार नेत्र बना लेता हो। अतः इसमें संदेह नहीं कि नरक और भूतल पर ही नहीं. स्वर्ग में यदि देव हैं तो उनको भी दुःख है। चारों गतियों में कहीं कोई पूर्ण सुखी नहीं। और कोई दुःख न हो तो भी मरने का दुःख तो प्रत्येक प्राणी के साथ लगा ही हुआ है। कहा भी है—

या संसार महावन भीतर भरमत छोर न आवे।
जन्मन मरन जरादों दाहे जीव महा दुख पावे॥
कबहुंक जाय नरक-पद भुंजे छेदन भेदन भारी।
कबहुंक पशु-पर्याय धरे तहां बध बन्धन भयकारी॥
सुरगति में पर-संपति देखे राग-उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहीं कोई॥
कोई इष्ट-वियोगी विलखे कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री दीखे कोई तनका रोगी॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै वैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहर दीखे किस ही उर दुचिताई॥
कोई पुत्र बिना नित झूरैं होय मरै तब रोवे।
खोटी सन्तति से दुख उपजै क्यों प्राणी सुख सोवे॥
पुण्य उदय जिनके तिनको भी नाहिं सदा सुखसाता।
यह जगवास यथारथ दीखे सब ही है दुखदाता॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह संसार अनात्म है।

अनात्म शब्द का अर्थ है अपने से भिन्न। अपने आत्मा के अतिरिक्त स्त्री, पुरुष, मित्र, धन, धान्य, महल–मकान आदि सब चेतन व अचेतन अनात्म हैं। जगत् इन्हीं से बनता है, इसलिए सारा जगत् ही अनात्म है।

यह जीव अनात्म जगत् को आत्म-स्वरूप अनुभव करने की गल्ती करता है। इस गल्ती से इसे जगत् में नाना क्लेश सहने पड़ते हैं, फिर भी यह उनकी परवाह न करके ऐसी गल्ती करता रहता है। यह सब अविवेक का फल है। इसी को मिथ्यात्व कहते हैं। अनात्म में आत्म-बुद्धि का होना ही मिथ्यात्व है। यही दुःख की जड़ है। जब तक विवेक (भेद विज्ञान) जागृत नहीं होता तब तक मनुष्य छीना-झपटी करके भी संसार के पदार्थों को अपनाना चाहता है और उनको आत्म-रूप अनुभव करके दुःख पाता है, किन्तु विवेक के जागृत होने पर जब अपने से भिन्न समस्त चेतन व अचेतन पदार्थों में परत्व का अनुभव होने लगता है तब उनके संयोग व वियोग में सुख व दुःख का अनुभव भी नहीं होता। इसलिए अपने को और पर को पहचानो। अनात्म को आत्म मत समझो। यह शरीर भी तुम्हारा नहीं है। तुम तो चेतन हो, यह जड़ है। इसके गुण भिन्न हैं, तुम्हारे गुण भिन्न हैं। तुम अपने विवेक को जागृत करो। आलस्य छोड़कर आत्म-चिन्तन में लगो। तुम तो सोये पड़े हो।

निज पर नाहिं पिछान्या रे,
मोह मिथ्यात्व-उदय पर-जड़कूं निज कर मान्या रे ।।टेक।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जड़ स्पर्श रस, गंध वर्ण पुद्गल परवाना रे।
तू ज्ञायक सब ज्ञेय-द्रव्य को भेद न पाना रे ॥१॥
तन धन परिजन राज संपदा मांहिं भुलाना रे।
मात तात सुत नार सदन में ममत धराना रे ॥२॥
मैं कालो मैं गोरो लंबो रूप सराना रे।
मैं पंडित मैं सूर सुगट जीतूं रण थाना रे ॥३॥
क्रोध मान माया छल बल कर लोभ लगाना रे।
पंच-इन्द्रिय के विषय वाग में मग्न रहाना रे ॥४॥
या विधि काल अनन्त गयो जग जन्म धराना रे।
मर मर फिर फिर जन्म धार के हुयो हैराना रे ॥५॥
अब चेतो तो दाव भलो है जिन शर्ण गहाना रे।
शुद्ध चिदानन्द ध्यान करो पावो शिव-थाना रे ॥६॥
ज्ञान अनन्त दर्श सुख वीरज गुण प्रगटाना रे।
'जोहरी' निज पर भेद करो लख चेतन बाना रे॥
निज पर नांहिं पिछान्या रे ॥७॥

आत्मन्! तू दूसरों को अधिक सम्पत्तिशाली देखकर दुःखी मत हो। न तू यह विचार कि इन महलों में रहने वालों की अपेक्षा मैं अधिक दुःखी हूं, मेरा जीवन निःसार है। तू समझ कि जीवन की सफलता बाह्य-वैभव से नहीं, किन्तु अपनी आध्यात्मिक सम्पत्ति-जीवन की पवित्रता से है। यदि हम झोंपड़ी में रहते हुए रूखी-सूखी रोटियां खाकर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फटे-पुराने कपड़े पहनकर भी अपना जीवन सन्तोष से व्यतीत कर सके तो उस वैभवशाली से बहुत अच्छे हैं जो बहुत वैभव होते हुए भी असन्तोष की ज्वाला से जल रहा है और परिग्रह बढ़ाने की आशा और प्रयत्न में रात दिन मारा-मारा फिरता है। हे आत्मन्! परिग्रह की चिन्ता से तेरा उद्धार न होगा। तेरा धर्म तो यह है कि जिस स्थिति में भी तू है उसको असन्तोष के साथ व्यतीत न कर, बल्कि उसी को सन्तोष द्वारा आनन्दमय बनाता हुआ तू आगे बढ़। तुझे रूखी-सूखी रोटियों में भी षट्रस-व्यंजन का आस्वाद लेने की आदत डालनी चाहिए, झोंपड़ियों में भी महलों का सा आनन्द अनुभव करने का अभ्यास करना चाहिए। अनात्म की चिन्ता में लगा रहेगा तो अपने को भूल जायगा, अपने कर्तव्य को भूल जायगा, दुःख पावेगा।

सामायिक में बैठने वाला जो साधक इस भांति संसार के सम्बन्ध में चिन्तन करता हुआ अपनी स्थिति सोचता है वह इस अशरण, अशुभ, अनित्य, दुख रूप और अनात्म संसार से संवेग को प्राप्त हो जाता है अर्थात् संसार, शरीर और भोगों से अनुराग हटाकर उदासीनता धारण कर लेता है वही अपना उद्धार करने में समर्थ होता है। संसार का स्वरूप समझने के साथ शरीर और भोगों से भी विरक्ति का होना आवश्यक है क्योंकि भोगों में आसक्ति से शरीर मिलता है और शरीर के कारण संसार के नाना दुःख सहने पड़ते हैं। शरर र और भोगों में आसक्ति भी अज्ञान के कारण होती है। इसलिए इनके स्वरूप को और भी विशेष रीति से समझ लेना चाहिए, जिससे कि अज्ञान न रहे और इनमें मोह न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर का स्वरूप

यह शरीर महा अपवित्र है। संसार की जितनी भी अपवित्र और ग्लानि के योग्य वस्तुएं हैं उन सबका कारण शरीर है। इसके संयोग से दूसरे पवित्र पदार्थ भी अपवित्र बन जाते हैं। इसमें कोई वस्तु प्रीति के योग्य नहीं। कहा भी है:—

देह अपावन अथिर घिनावनी इसमें सार न कोई।
सागर के जल से शुचि कीजे तो भी शुद्धि न होई॥
सप्त कुधातु भरी मल मूतर चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में और अपावन को है॥
नव मल-द्वार स्रवैं निशि-वासर नाम लिए घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहाँ कौन सुधी सुख पावै।
पोषत तो दुख दोष करै अति सोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन योग्य स्वरूप न याको विरचन योग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै यामें सार यही है॥

और भी कहा है:—

तन में मत राचै, जिया तू तन में मत राचै।
तन की प्रीति जीत नहिं तेरी, चहुंगति दुख साँचे॥टेक॥
यह तन अथिर जान जल-बुदबुद इक छिनमै विनसै।
पोषत पोषत गलत जात ज्यों बिजरी नभ दरसै॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अस्थि चाम शोणित म मेद अरु मज्जा माँस मई।
अति गिलान उतपत वीरज की मल झरती जु थई ॥२॥
वात पित्त कफ जनित व्याधि की, पोट भरी सगरी।
चिद्विलास आराध ओट, ये अवगुण की अगरी ॥३॥
जड़ लक्षण अरु जड़ कर चेतन दुर्गति में पटकै।
याको यारी भव भव ख्वारी चिद्! नाहक भटकै ॥४॥
एक मुहूरत प्रीत त्याग तन जो निज-भूति रटै।
तो प्रत्यक्ष ज्ञान कर मंडित दृग बल "चैन" सटै ॥५॥

शरीर से इस जीव ने अनादि काल से प्रेम किया पर सिवाय भव-भव में दुःख भोगने के लिए कोई भला नहीं हुआ। अब आगे अनन्त काल तक भी इससे प्रेम किया जाय तो भी वही दशा होगी, सदा दुःख मिलेगा। इसके विपरीत इस शरीर से ममत्व हटाकर आत्मा से प्रेम जोड़ा जाय, उसकी अनुभूति की जाय तो अन्तमुहूर्त में ही कल्याण हो सकता है।

भोगासक्ति का परिणाम

भोगों के स्वरूप का भी विचार कीजिए। इनके हानि-लाभ पर भी दृष्टि दीजिए। श्री गुरुओं का उपदेश है:—

"भोग बुरे भव-रोग बढावें बैरी हैं जग जी के।
वे-रस होय विपाक समय अति सेवत लागें नीके॥
वज्र अग्नि विषसे विषधरसेहैं अधिके दुखदाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म-रत्न के चोर प्रबल अति दुर्गति पन्थ सहाई ॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कंचन माने ॥
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मन-वाँछित जन पावे।
तृष्णा-नागिन त्यों त्यों भंके लहर लोभ-विष लावे ॥

वास्तव में इन्द्रिय-भोगों से आज तक किसी की तृप्ति नहीं हुई। तीन लोक में एक भी प्राणी ऐसा नहीं मिल सकता जो पंचेन्द्रिय के विषय-सेवन से परिपूर्ण सुखी बना हो। इन्द्र और चक्रवर्ती की महान भोग-सम्पदा पा लेने पर भी जीव की तृप्ति नहीं होती। बल्कि परिणाम यह होता है कि भोगासक्ति से देव भी एकेन्द्रिय-वृक्ष आदि बन जाते हैं और बड़े-बड़े तपस्वियों की तपस्या भी निष्फल चली जाती है। तब इनमें फंस कर जन साधारण के दुःख पाने का तो क्या ठिकाना ? इस पर भी ध्यान देने की बात यह है कि इनमें वास्तविक सुख नहीं है। मृगमरीचिका में जल की तरह इनमें सुख की कल्पना ही है। इनके साथ आकुलता लगी हुई है और जहाँ आकुलता है वहां सुख कहाँ ? इनमें जो काल्पनिक सुख है वह भी कर्माधीन है, क्षणिक है, एवं पाप-बन्ध कारक होने से आगामी महा दुःख का कारण है। इनको किंपाक फल (विष-फल) की उपमा दी गई है। दिखने में सुन्दर और परिणाम में बहुत ही दुख दायक हैं। जो अविवेकी हैं, आगा-पीछा नहीं सोचते वे ही इन विषयों के प्रलोभन में पड़ कर आत्म-सम्पत्ति को ठगाते हैं। किन्तु जो विवेकी हैं, परिणाम पर विचार करते हैं वे कभी इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठग विद्या के चक्कर में नहीं फंसते। इनसे सदा सावधान रहने के लिए कहा गया है:—

चिदानन्द सीख सुनो गुरु की,
पंच करण के भोग जगत-जन ठिगने की भुरकी।।टेक।।
काल अनन्त वितीत कियो तैं विषय-भोग माईं।
चक्री इन्द्र विभूति पाय नहिं तृपत आस थाई।।१।।
ज्यों पक्वान मधुर-रस सुन्दर विष-युत प्राण हरै।
त्यों ये विषय मधुर-से दरसत फल दुख भूरि भरै।।२।।
सेवत सेवत विरस होत हैं बहुत व्याधिकारी
चिन्मूरत गुण-रतन चोर ये अवगुण—भंडारी।।३।।
चंचल कर दुर्जन मतंग-मन दरखत-धरम दलै।
इन वस जीव मुकत-मग गहि फिर उलटी चाल चलै।।४।।
दुद्धर तप कर बड़े बड़े मुनि शिव-उद्यम ठानै।
कर निदान विषयन कर आतुर तप-लक्ष्मी हानै।।५।।
उपशम-श्रेणी शुक्ल-ध्यान चढि फिर मिथ्यात्व गिरे।
ये करतूत सकल विषयन के बार अनन्त मरै।।६।।
या विध नाच नचावत जिय को सुध बुध खोय दई।
तीन लोक को ईश चिदानन्द सो क्रिम रंक थई।।७।।
कहूं कहाँ लो सुन मन मेरे, "चैन" परम चाहे।
तो इन भोग थकी मत राच, शिव वर सुख लाहै।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सेवन में सुख कितना कम है और दुःख कितना-अधिक हैं यह निम्न लिखित लावणी में भी अच्छी तरह समझाया गया है। ध्यान से पढ़िए।

है यह संसार असार दुःख का घर रे।
ये विषय-भोग दुःख-खानि तू इनसे डर रे ॥टेक॥

इसमें दुख मेरु समान, सुक्ख ज्यों राई।
सो भी सब आकुलता मय पड़त दिखाई ॥
तिसकी उपमा इस भांति गुरू बतलाई।
सो सुनो कथा चित धार कहूं समझाई ॥
इसके सुनने में सुधी ध्यान अब धर रे।
ये विषय-भोग दुख-खानि तू इनसे डर रे ॥१॥

इक पथिक महाबन माहिं फिरे था भटका।
ता पर गज दौड़ा एक तभी वह सटका ॥
सो कुए में तरु की मूल पकड़ के लटका।
ता तरु को क्रोधवश जा हाथी ने झटका ॥
तरु से मधुमक्खी उड़ी शोर अति कर रे ॥ये विषय॥

पंथी के मक्खी चिपट गईं उड़ प्यारे।
चौ नाग एक अजगर कुए में मुंह फारे।
देखत ऊपर को गिरे पथिक किस वारे ॥
तहां टपकी मधु की बूंद पथिक मुख पर रे ॥ये विषय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शठ स्वादत मधुका स्वाद सभी दुख भूला।
कर आस लखे ऊपर को जड़ से झूला ॥
तहाँ से खग-दम्पति दो जाते थे गुण-मूला।
तिन देख दया कर कहे वचन अनुकूला ॥
निकसे तो लेय निकाल तुझे ऊपर रे ॥ ये विषय० ॥
बोला पंथी—इक बूंद शहद मुख आवे।
तब चलूं तुम्हारे साथ यही मन भावे ॥
सो एक बूंद को देखो शठ मुख बावे।
ना लखे वेदना घोर टंगा जो पावे ॥
सो ही गति संसारी जीवों की नर रे ॥ ये विषय० ॥
भव-वन में पंथी-जीव काल-गज जानो।
कुल-कुआ कुटुम-जन मधुमक्खी पहिचानो।
चउ-गति चारों अहि, निगोद अजगर मानों।
जड़-आयु रात-दिन काटत मूस बखानो ॥
है विषय-स्वाद मधु-बिन्दु गेह तरुवर रे॥ये विषय० ॥
विद्याधर सद्गुरु शिक्षा देत दया कर।
माने तो दुख से छूट जाय उत्तम नर ॥
संसार में सुख है शहद बूंद से लघुतर॥
दुख कूप-पथिक से गुणा अनन्ता अकसर ॥
संसार दुःख से डरो सुधी थर-थर रे ॥ ये विषय. ॥
खल काल-बली से सुर असुरादिक हारे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरि हली चक्रपति याने छण में मारे ॥
ये विषय भोग विषधर हैं दारुण कारे
इनका काटा ना बचे जगत में प्यारे ॥
इनका त्यागी भये 'नाथूराम' अमर रे । ये विषय०॥

विषयों में सुख नहीं है फिर भी यह जीव अपनी बुरी आदत के वश उनको सहसा नहीं छोड़ता। अतः संबोधनार्थ एक दो पद्य और उद्धृत कर देते हैं।

वीरा ! थारी बान बुरी परी रे वरज्यो मानत नाहिं ॥टेक॥

विषय-विनोद महा बुरे रे, दुख दाता सरबंग।
तू हट सौं ऐसे रमै रे, दीवे पड़त पतंग ॥ वीरा० ॥१॥

ये सुख हैं दिन दोय के रे, फिर दुख की संतान।
करै कुल्हाडी लेइके रे मति मारै पग जान ॥वीरा० ॥२॥

तनक न संकट सहि सकै रे ! छिन में होय अधीर।
वहु सुपना हो जायगा रे करनी रहेगी निदान।
'भूधर' फिर पछतायगा रे अब ही समुझि अजान ॥वीरा४

पंचेन्द्रिय के विषय-सेवन से सुख नहीं मिल सकता तो वह कैसे मिल सकता है-इसके उत्तर में कहते हैं:—

आतमज्ञान लखै सुख होई ॥ टेक ॥
पंचेन्द्री सुख मानत भोंदू, या में सुख को लेश न कोई ॥आतम,॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसी खाज खुजावत मीठी, छै ते दुखते दे रोई।
रुधिरपान करि जोंक सुखी है, सूंतत बहु दुख पावै सोइ।आतम॥
फरस दन्ति, रस मीन, गंध अलि, रूप शलभ, मृग नाद हि लोइ।
एक एक इन्द्रिनतै प्राणी, दुखिया भये गये तन खोइ ॥आतम.॥
जैसे कूकर हाड़ चचौरे त्यों विषयी नर भोगै भोइ।
"द्यानत" देखो राज त्यागि नृप, वन वसि सहैं परिषह जोइ॥आ.३

संसार, शरीर और भोगों के स्वरूप को ठीक—ठीक समझ लेने वाले प्राणी के हृदय में सचमुच वैराग्य जागृत रहता है। सामायिक के समय में ही नहीं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में वह संसार से निर्लिप्त रहता है। उसके लिये संसार में आसक्ति उत्पन्न करने वाली कोई वस्तु नहीं रहती। अपने शरीर तक को भी वह भिन्न अनुभव करता है उसे संसार एक जंजाल प्रतीत होता है। शरीर एक कारागृह मालूम देता है। अतएव वह उसमें से शीघ्र निकलना चाहता है, पुनः उसी में फंसना नहीं चाहता। वह मनुष्य जीवन को महा दुर्लभ समझ कर अपने उद्धार के लिए विशेष प्रयत्न करता है। उसे यह अनुभव हो जाता है कि संसार में मेरा कोई साथी नहीं। न मेरे साथ कोई आया, न मेरे साथ कोई जायगा।यहाँ सब स्वार्थ के सगे हैं। अपनी करणी अपने साथ है। यदि मैं भले काम करूंगा तो मेरी भली गति होगी और यदि बुरे काम करूंगा तो बुरी गति होगी। भोगों में आसक्ति नारकीय वेदना का कारण है। इस अनुभव का फल यह होता है कि उसे चक्रवर्ती की संपदा भी नहीं लुभा पाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार की महान से महान संपदा भी उसके लिए तुच्छ, नगण्य एवं त्याज्य होती है।

वज्रदन्त चक्रवर्ती अपनी राज्य-सभा में बैठे हुए थे। माली ने एक कमल की डाली लाकर उन्हें भेंट की। उसमें उन्होंने एक भौंरे को मरा हुआ देखा जो सुगन्ध के लोभ से उसमें आ फँसा था और नासिका-इन्द्रिय के वशीभूत हो अपने प्राण दे चुका था। उन्होंने सोचा—एक इन्द्रिय के आधीन होने से ही जब इस जीव की यह दुर्दशा हुई तब पाँचों इन्द्रियों के विषय-सेवन में आसक्त रहने वाले हम लोगों की तो न मालूम क्या दुर्गति होगी ? उनको तत्काल विरक्ति होगई और उन्होंने अपने पुत्रों को बुला राज्य देना चाहा। पर उनके पुत्र उनसे भी अधिक विरक्त थे, वे संसार की स्थिति को उनसे भी अधिक समझ चुके थे। उन्होंने कहा—पिताजी ! यह राज्य तो वमन है। जिसे बुरा समझ कर आप छोड़ रहे हैं उसे हम कैसे अपनावेंगे ! क्या यह हमारे लिए दुःख व बन्धन का कारण नहीं होगा ! संसार के भोगों की स्थिति इस भौंरे ने अच्छी तरह प्रगट कर दी है। भोगों में आसक्ति से कितना दुःख होता है यह इस भौंरे को देखने से 'कर-कङ्कन' की तरह स्पष्ट है। हे पिताजी, हम भी आप ही की तरह छुटकारा चाहते हैं। हमें अब कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ना है, बल्कि जिन कारणों से कर्म आते हैं और बन्धते हैं उन्हें रोकना है और उनको समूल हटा कर अपना शुद्ध-स्वरूप प्राप्त करना है। इस विशाल विश्व में अनादि काल से अब तक आत्मज्ञान पाये बिना हमने भ्रमण किया, कहीं सुख नहीं पाया। सुख का कारण रत्नत्रय, है उसकी प्राप्ति बड़ी कठिन है। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य भव ही इसके अनुकूल है अतः हम भी आपके ही साथ तप करेंगे और रत्नत्रय की आराधना कर सिद्धि प्राप्त करेंगे॥।

जिसका व्यवहारिक जीवन पवित्र नहीं होता उसके भावों में विरक्ति का आना बड़ा कठिन होता है। सामायिक की क्रिया करके भी उसके जीवन में सात्विकता नहीं आती ऐसे लोग अपने जीवन-सुधार के लिए क्या करें यह तो हम आगे चल कर लिखेंगे। यहां यह बता देते हैं कि जिनका मन उपर्युक्त चिन्तन में कम लगता है, या उपर्युक्त चिन्तन के बाद जिनके पास समय बचता है वे अपने मन को अनपेक्षित विषयों में न घूमने दें। उसे ऐसे ही विचारों में और कार्यों में लगावें जिनसे कि जीवन-सुधार या आत्म-स्वरूप में स्थिति हो। आध्यात्मिक शास्त्रों का स्वाध्याय या किसी ज्ञानी सत्पुरुष के साथ धर्म चर्चा भी ऐसे समय में की जा सकती है तथा जीवन-सुधार का पाठ पढ़ाने वाले भजन आदि का अर्थ समझ कर मनन करना भी उपयुक्त हो सकता है। हम यहाँ कुछ ऐसे भजनों का संग्रह कर देते हैं जिनके मनन से आत्मा में जागृति होगी और उसकी स्थिति सुधरेगी+।

॥ जो इस संवाद को विस्तार से पढ़ना चाहें वे यति नयनसुखदास कृत वज्रदन्त-चक्रवर्ती का बारहमासा पढ़ें।

+इन भजनों में यह आवश्यक नहीं है कि इन सब ही का पाठ किया जाय। साधक को अपनी रुचि के अनुकूल इनमें से, या इसी आशय के अन्य भजन, पाठ चुन लेने चाहिए और उनका प्रतिदिन मनन करके सदा स्मरण रखना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्‌बोधन

ऐ सोने वाले[१] जाग[२] जाग, ले माल[३] लुटेरा[४] चला भाग ।। टेक ।।

तू पड़ा सो रहा है अचेत, पशु[५] चरे जा रहे उधर खेत ।

है भस्म कर रही तुझ समेत, घर में[६] भड़की जो विकट आग ।।१।।

है संकट चारों ओर घोर, आया जीवन का पास छोर[७] ।

क्या जाने कब कट जाय डोर, डस रहा तुझे है काल नाग[८] ।।२।।

उठ अब भी अपने को संभाल, आई जो विपदा उसे टाल ।

है समय बचाले जान माल, अब तो आलस की नींद त्याग ।।३।।

ऐ मेरे मीत ! निचीत[९] कहा सोवै ।। ए० ।। टेक ।।

फूटी काय सराय पायक' धरम रतन जिन[१०] खोवै ।। ए० ।। १ ।।

निकसि नगोद मुकत जैवे को, राह-विषे कहा जोवै[११] ।।ए०।।२।।

'द्यानत, गुरु जागरू[१२] पुकारैं, खबरदार[१३] किन होवै[१४] ।। ए० ।। ३ ।।

❀ ❀ ❀ ❀

अरे मन मूरख समझ न पाये ।। टेक ।।

जैसी करनी वैसी भरनी इस पर ध्यान न लाए ।

---

(१) अज्ञान या आलस्य प्रमाद में जीवन बिताने वाले (२) सावधान हो । (३) आत्म-सम्पत्ति, रत्नत्रय । (४) काम, क्रोध आदि ठग । (५) इंद्रियां । (६) हृदय में । (७) अन्त मृत्यु का दिन (८) सांप । (९) निश्चिन्त, बेफिक्र । (१०) मत । (११) देखता (१२) चौकीदार । (१३) सावधान । (१४) क्यों नहीं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने हाथों बोये कांटे, अपने पैर चुभाए ॥ १ ॥
करमन की बगिया पर बैठा, उल्टा आश लगाए।
बोये झाड़ बबूल के मूरख, आम कहाँ से खाए ॥ २ ॥
अपनी खोटी समझ के बल पर मनमानी कर जाए।
जब चिड़ियां चुग जाए खेती, फिर पाछे पछताए ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

आगे कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ॥आगे०॥टेक॥
ह्याँ[1] तौ तैंने पोल मचाई, हवां[2] तौ होय संभाल रे। आगै० ॥१॥
झूठ कपट करि जीव सताये, हरस्या पराया माल रे।
सम्पति सेती धाप्या[3] नाहीं, तकी विरान[4] बालरे[5] ॥ आगै० ॥२॥
सदा भोग मैं मगन रह्या तू लख्या नहीं निज हाल रे।
सुमरन दान किया नहीं भाई, हो जासी पैमाल[6] रे ॥आगै०॥३॥
जोवन मैं जुवती संग भूल्या; भूल्या जब था बाल रे।
अब हूं धारो 'बुधजन' समता, सदा रहहु खुश हाल रे ॥आगै०॥४॥

हित–शिक्षा

तेरो करि लै काज वखत[7] फिर ना ॥ तेरो० ॥ टेक ॥
नर-भव तेरे वश चालत है, फिर-पर भव पर-वश परना ॥१॥
आन अचानक कण्ठ दवैंगे, तब तोकौं नाहीं सरना।

---

(१) इस लोक में। (२) वहां, परलोक में। (३) तृप्त होना। (४) पराई। (५) स्त्री। (६) बर्बाद। (७) समय, अवसर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यातैं विलम[1] न ल्याव बावरे, अब ही कर जो है करना ॥२॥
सब जीवन की दया धार उर, दान सुपात्रनि कर धरना।
जिनवर पूजि शास्त्र सुनि नित प्रति, 'बुधजन' संवर आचरना॥३

❀ ❀ ❀ ❀

नर-भव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न कर करना हो ॥टेक॥
नाहक[2] ममत ठानि पुद्गल सौं, करम-जाल क्यौं परना हो ॥१॥
यह तो जड़ तू ज्ञान अरूपी, तिल-तुष ज्यौं गुरु वरना हो।
राग दोष तजि भजि समताकौं, कर्म साथ के हरना हो ॥२॥
यो भव पाय विषय सुख सेना[3], गज[4] चढ़ ईंधन[5] ढोना हो।
'बुधजन' समुझि सेय जिनवर पद, ज्यौं भवसागर तरना हो ॥३

❀ ❀ ❀ ❀

अज्ञानी पाप-धतूरा न बोय ॥ टेक ॥
फल चाखन की बार भरै दृग[6], मर है मूरख रोय ॥ अज्ञानी० ॥
किंचित् विषयनि के सुख कारण दुर्लभ देह न खोय।
ऐसा अवसर फिर न मिलेगा, इस निंदिया मत सोय ॥२॥
इस बिरियामें[7] धर्म-कल्पतरु[8], सींचत स्यानै लोय।
तू विष बोवन लागत तो सम, और अभागा कोय ॥ ३ ॥
जे जग में दुख दायक बे-रस इस ही के फल सोय।

---

(१) देर। (२) व्यर्थ। (३) सेवन करना। (४) हाथी। (५) लकड़ी। (६) आंखें। (७) अवसर। (८) कल्पवृक्ष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों मन 'भूधर' जानिकै भाई, फिर क्यों भोंदू[1] होय ॥४॥

❀ ❀ ❀ ❀

जीव ! तैं मूढ़पना कित पायो ॥ टेक ॥

सब जग स्वारथ को चाहत है, स्वारथ तोहि न भायो[2] ॥१॥
अशुचि अचेत[3] दुष्ट तन माहीं, कहा जान विरमायो[4] ।
परम अतिन्द्री निज-सुख हरिकै[5], विषय रोग लपटायो ॥२॥
चेतन नाम, भयो जड़, काहे, अपनो नाम गमायो ।
तीन लोक को राज छांडिकै, भीख मांग न लजायो ॥३॥
मूढ़पना मिथ्या जब छूटै, तब तू सन्त कहायो ।
'द्यानत' सुख अनंत शिव विलसो[6], यों सद्गुरु बतलायो ॥४॥

सुनि सुजान ! पांचों रिपु वश करि, सुहित करन असमर्थ अवशकरि[7] ॥ टेक ॥
जैंसे जड खखार[8] को कीड़ा, सुहत सम्हाल सकै नहिं फंसकरि ।
पांचन को मुखिया मन चंचल, पहले ताहि पकर रस कसकरि॥१
समझ देखि नायक के जीतै, जैहै भाजि सहज सब लसकरि[9] ॥२॥
इन्द्रिय ? जनम सब खोयो बाकी चल्यो जात है खसकरि[10] ।

---

(१) मूर्ख। (२) अच्छा नहीं लगा (३) अचेतन। (४) आसक्त हुआ। (५) खोकर। (६) भोगो। (७) जो वश में नहीं करेगा तो। (८) कफ। (९) सेना। (१०) खिसककर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'भूधर' सीख मान सतगुरु की, इनसों प्रीति तोरि अब वशकरि
सुनि० ॥ ३ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

छांडत क्यों नहिं रे, हे नर ! रीति अयानी[1] ।
बार बार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आना कानी ॥
विषय तजत न भजत बोध[2] व्रत[3], दुख-सुख जाति[4] न जानी ।
शर्म[5] चहै न लहै, शठ ज्यों घृत-हेत विलोवत पानी ॥१॥
तन धन सदन[6] स्वजन जन तुझ सौं, यह परजाय विरानी ।
इन परिनमन विनश-उपजन सो, तैं दुःख सुख कर मानी ॥२॥
इस अज्ञान तैं चिर-दुख पाये, तिनकी अकथ कहानी ।
ताकों तज दृग[7]-ज्ञान-चरन[8] भज, निज-परनति[9] शिव दानी ।
यह दुर्लभ नर-भव सुसंग लहि, तत्व-लखावन[10] वानी ।
'दौल' न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी ॥४॥

❀ ❀ ❀ ❀

चेतन यह बुधि कौन सयानी, कही सतगुरु हित सीख न मानी ।
कठिन काकताली[11] ज्यों पायो, सुकुलश्रवण जिनवानी ॥१॥

---

(१) मूर्खतापूर्ण । (२) ज्ञान । (३) चरित्र । (४) स्वभाव । (५) सुख । (६) घर । (७) दर्शन । (८) चरित्र । (९) अपनी परिणति में भ्रमण करना (१०) जीवादि तत्त्वों का स्वरूप दिखाने वाली जिनवाणी (११) काकतालीय की तरह, अत्यन्त दुलभ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमि न होत चांदनी की ज्यों, त्यों नहीं धनी[1] ज्ञेय को ज्ञानी ।
वस्तु रूप यों तू यों ही शठ, हटकर पकरत सोंज[2] बिरानी ॥२॥
ज्ञानी होय अज्ञान राग-रूप, कर निज सहज स्वच्छता हानी ।
इन्द्रिय जड़ तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥३॥
चाहै सुख दुखही अवगाहै, अब सुनि विधि[3] जो है सुखदानी ।
"दौल" आप करि आप आपमें, ध्याय लाय लय[4] समरससानी[5] ॥४॥
चेतन० ॥

सुमर सदा मन आतमराम, सुमर सदा मन आतमराम ॥टेक॥
स्वजन कुटुम्बी जन तू पोषै, तिनको होय सदैव गुलाम ।
सो तो हैं स्वारथ के साथी, अन्त काल नहिं आवत काम ॥१॥
जिमि मरीचिका में मृग भटकै, परत सो जब ग्रीषम अतिघाम[6] ।
तैसे तू भव माहीं भटकै, धरत न इक छिन हूँ विसराम[7] ॥२॥
करत ग्लानि अब भोगन में, धरत न वीतराग परिनाम ।
फिर किमि नरक माहिं दुख सहसी, जहां सुख लेश न आठौं-जाम[8] ॥३॥
तातैं आकुलता अब तजिकै, थिर ह्वै बैठो अपने धाम ।
'भागचन्द' वसि ज्ञान नगर में, तजि रागादिक ठग सब ग्राम ॥४

(१) स्वामी । (२) संपत्ति । (३) तरीका । (४) लीनता । (५) साम्यभाव से परिपूर्ण । (६) तेज धूप । (७) स्थिरता । (८) पहर । (९) घर, हृदय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चेतन तैं यों ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृग तृष्णा जल जान्यो।
चेतन० ॥ टेक ॥

ज्यों निशि तम में निरखि जेवरी[1], भुजंग[2] मान नर भय उर[3]
आन्यो। चेतन० ॥१॥

ज्यों कुध्यान-वश[4] महिषि मान निज फँसि नर[5] उर माहीं
अकुलान्यो।
त्यों चिर मोह अविद्या पेर्‍यो, तेरो तैं ही रूप भुलान्यो ॥२॥

तोय[6] तेल ज्यों मेल न तन को, उपज खपत[7] में सुख दुख मान्यो।
पुनि पर-भावन[8] को करता ह्वै तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो ॥३

नर भव सु-थल सुकुल जिनवानी, काल-लब्धि वल योग
मिलान्यो।
'दौल' सहज भज उदासीनता, ताष-रोष[9] दुख-कोष[10] जु भान्यो[11]॥
चेतन० ॥४॥

❀ ❀ ❀ ❀

आपा नहिं जाना तू ने कैसा ज्ञान-धारी रे॥ टेक॥
देहाश्रित[12] करि क्रिया आप को, मानत शिव-मग चारी[13] रे ॥१॥

---

(१) रस्सी। (२) सांप। (३) हृदय। (४) स्वप्न। (५) राजा।
(६)जल (७)नाश (८) कर्मजनित भाव (९)राग-द्वेष, हर्ष-विषाद
(१०) दुख की खान (११) नाश, मिटा देना (१२) शारीरिक।
(१३) मोक्ष मार्ग में चलने वाला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज-निवेद-विन[1] घोर परीषह, विफल कही जिन सारी रे ॥२॥
शिव चाहै तो द्विविध कर्म तें, कर निज-परनति न्यारी रे ॥३॥
दौलत' जिन निज-भाव पिछान्यौ हित भव विपति विदारी रे ॥

❀ ❀ ❀ ❀

निपट अयाना तैंने आपा नहिं जाना नाहक भरम भुलाना रे ॥
॥ टेक ॥

पीय अनादि मोह-मद मोह्यो, पर-पद में निज माना रे ॥१॥
चेतन चिन्ह भिन्न जड़ता सों, ज्ञान दरश रस साना रे ।
तन में छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों, जल में कजदल माना रे ॥२॥
सकल भाव निज निज परनति मय, कोइ न होय बिराना रे ।
तू दुखिया परकृत्य मानि ज्यों, नभ-ताडन श्रम ठाना रे ॥३॥
अज गन में हरि भूल अपनपो, भयो दीन हैराना रे ।
'दौल' सुगुरु धुनि सुनि निजमैं निज, पाय लह्यो शिवथाना रे ॥४

❀ ❀ ❀

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायो
ज्यों शुक नभ चाल विसरि, नलिनी लटकायौ ॥अपनी०॥ टेक॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश-बोध-मय विशुद्ध ।
तजि, जड़ रस-फरस-रूप पुद्गल अपनायौ । अपनी० ॥१॥
इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग-रुख में चित्त ।
दायक भव-विपत्ति वृन्द बन्ध को बढ़ायौ । अपनी० ॥२॥
चाह-दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै,
समता-सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायौ । अपनी० ॥३॥

---

(१) आत्म-ज्ञान ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानुष-भव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय
'दौल' निज-स्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ। अपनी० ॥४॥

❁ ❁ ❁

चेतन तोहि न नेक सँभार ॥ टेक ॥

नख सिख लौं दिढ-बन्धन बेढे, कौन करै निरवार[१] ॥ चेतन ॥१॥

जैसै आग पखान[२] काठ में लखिय न परत लगार[३]।
मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार ॥ चेतन ॥२॥

ज्यों गजराज पखार[४] आप तन आपहिं डारत छार[५]।
आपहि उगलि पाट[६] को कीरा, तनहि लपेटत तार ॥ चेतन ॥३॥

सहज[७] कबूतर लोटन को सो, खुलै न पेच अपार।
और उपायन बन 'बनारसी' सुमरन भजन अधार ।चेतन०॥४॥

❁ ❁ ❁

तू तो समझ समझ रे भाई ॥टेक॥

निशि दिन विषय भोग लपटाना, धरम वचन न सुहाई ।तु तो०।१

कर मनका[८] लै, आसन मारयो, बाहिज[९] लोक रिझा।

---

(१) हटाना (२) पत्थर (३) जरासी भी (४) धोकर (५)मिट्टी (६)रेशम का कीड़ा (७)स्वभाव (८)माला (९)बाहर में दिखावटी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा भयो *बक-ध्यान धरे तैं, जो मन थिर न रहाई ॥तू तो० ॥
मास मास उपवास किये तैं, काया बहुत सुखाई ।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्या, कारज कौन सराई ॥ तू तो० ॥
मन वच काय जोग थिर कर कैं, त्यागो विषय कषाई ।
'द्यानत' सुरग मोख सुखदाई, सद्गुरु सीख बताई ॥ तू तो० ॥

कर रे ! कर रे ! कर रे ! तू आतम हित कर रे ॥ टेक ॥
काल अनन्त गयो जग भमतैं(१), भव भवके दुख हर रे ॥ कर रे ॥
लाख कोटि भव तपस्या करतैं, जितो कर्म तेरो जर(२) रे ।
स्वास उस्वास माहिं सो नासैं, जब अनुभव चित धर रे । कररे ॥२
काहे कष्ट सहै बन माहीं राग दोष परिहर(३) रे ॥
काज होय सम-भाव विना नहिं, भावौ(४) पचि पचि मर रे ॥कररे०३
लाख सीख की सीख एक यह , आतम निज पर पर रे ।
कोटि ग्रन्थ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे ॥कररे०।४।

* * * *

सुन रे गँवार(५) नित के लबार(६) तेरे घट(७) मझार(८) परगट(९) दिदार(१०)

---

* बगुले का सा ।

(१) भ्रमण करते हुए । (२) झड़ता है । (३) दूर करदे (४) चाहे (५) मूर्ख (६) बकवादी (७) हृदय (८) में (९) प्रत्यक्ष (१०) आत्मा का दर्शन ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१
मत फिरै ख्वार उरझी को सुरझा ले ।।सुनरे गँवार० ।।टेक।।
तजि मन-विकार अनुभव को धार, कर बार-बार मन पर विचार
२
तू है समयसार अपने ही गुण गाले ।। सुन रे० ।।१।।
तू ही भव स्वरूप तू ही शिव-स्वरूप, होकै ब्रह्मरूप,पड़ा नर्क-कूप
३ ४
विषयन के तूप सेती मन को हटाले ।। सुन रे० ।।२।।
कहै दास नैन आनन्द दैन, सुन जैन-बैन, जासों होय चैन,
५
तजि मोह सैन नर भौ फल पाले ।। सुन रे ।।३।।

ॐ ॐ ॐ

पुजारी हृदय के पट खोल ।
कोई गावै कोई रोवै तू उनसे मत बोल ।।टेक।।
६
तू न किसी का कोई न तेरा, नाहक करता मेरा तेरा ।
तुझे पड़ी है क्या दुनियां की, मत रस में विष घोल ।।१।।
तेरी सूरत सुन्दर प्यारी, उसकी विमल छटा है न्यारी ।
इधर उधर मत फिरे भटकता, व्यर्थ बजावत ढोल ।।२।।
तेरे घट में है परमातम, बना मूढ़ मत भूले आतम ।
तेरे घट में छिपा हुआ है, तेरा रतन अनमोल ।।३।।

७
ज्ञान-दीप से तिमिर भगादे, आतम-शक्ति पुनः सरसादे ।

(१) दुखी (२) शुद्धात्मा (३) सेना (४) से (५) सेना
(६) व्यर्थ (७) अन्धकार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति तुला[1] से मनके[2] मनसे मनके[3] मनको तोल ॥४॥

ॐ ॐ ॐ

भौंदू भाई ! समझ शबद यह मेरा
जो तू देखै इन आँखिन सो तामैं कछू न तेरा ॥ भौंदू० ॥१॥
ए आँखें भ्रम ही सौं उपजीं, भ्रम ही के रस पागी।
जहँ जहँ भ्रम तहं तहं इनको श्रम, तू इनही को रागी ॥ भौंदू ॥२॥
ए आंखैं दोउ रची चामकी, चामहि चाम विलोवै।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवे ॥ भौंदू० ॥३॥
इन आँखिन कौ कौन भरोसो, ए विनसैं छिन माहीं।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं ॥ भौंदू० ॥४॥
पराधीन बल इन आंखिनको, विनु परकाश न सूझै।
सो परकाश अगनि रवि शशिको, तू अपना कर बूझै ।भौंदू ।५।
खुले पलक ए कछु इक देखहिं, मुंदे पलक नहि सोऊ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखैं दोऊ ॥ भौंदू० ॥६॥
जंगम काय पाय ए प्रगटैं, नहिं थावर के साथी।
तू तो इन्है मान अपने हग, भयो भीम को हाथी ॥ भौंदू० ॥७॥
तेरे हग मुद्रित घट अन्तर अन्धरूप तू डोलै।
कै तो सहज खुलें वे आंखैं, कै गुरु संगति खोलै ॥ भौंदू० ॥८॥

ॐ ॐ ॐ

भौंदू भाई ते हिरदै की आंखैं,
जे करषैं अपनी सुख सम्पति भ्रमकी सम्पति नाखैं ॥ भौंदू० ॥१॥
जे आंखैं अमृत रस वरषैं, परखैं केवलि वानी।
जिन्ह आंखिन विलोक परमारथ होहिं कृतारथ प्रानी ॥भौंदू० ॥२
जिन आंखिनहिं दशा केवल की, कर्म-लेप नहिं लागैं।

---

(१) तराजू (२) बाट (३) स्वभाव विचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिन आंखिन के प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै ॥ भौंदू ॥३
जिन आंखिन सौं निरख भेद गुन ज्ञानी ज्ञान विचारैं।
जिन आँखिन सौं लखिस्वरूप मुनि, ध्यान धारणा धारैं ॥ भौंदू॥४
जिन आंखिन के जगे जगत के लगे काज सब झूठे।
जिन सौं गमन होइ शिव सनमुख विषय विकार अपूठे ॥ ५ ॥
जिन आंखिन में प्रभा परम की, पर सहाय नहिं लेखै।
जे समाधि सौं लखे अखंडित, ढकै न पलक निमेखै। भौंदू० ॥६
जिन आंखिन की ज्योति प्रगट कैं, इन आंखिन में भासै।
तब इनहू की मिटै विषमता, समता रस परगासै ॥ भौंदू०।७॥
जे आंखे पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावै।
ये वे यह वह विकलप तजि, निरविकलप पद पावै ॥ भौंदू० ॥८

कर्त्तव्योपदेश

तजि पुद्गल को संग अज्ञानी जिया तजि पुद्गल को संग ॥टेक॥
तुम पोषत वह दोष करत है, पय पिय जेम भुजंग।
बड़वानल सम भूरि भयानक, घातक आतम अंग। १ ॥
या संग पंच पाप में लिपटो, भुगती कुगति कुढंग।
परिवर्तन(१) के दुख बहु पाये, याही के परसंग ॥ २ ॥
शीकर(२) स्वाति संग सागर के, होवत वारि विहंग।
भूपन को भूषण की संगति, ठानत आदर भंग ॥ ३ ॥
अजहूं चेत भई सो भई है, रे मद-मत्त मतंग।
नयन सुख्य सतगुरु करुणानिधि, बकसत(३) विभव अभंग ॥४॥

(१) पञ्च परावर्तन (२) पानी की बूंद (३) देना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो पुद्गल का परिवारा जामें चेतन है इक न्यारा । देखो० ।
स्पर्शन रसना घ्राण नेत्र पुनि श्रवण पंच यह सारा ।
स्पर्श रस पुनि गन्ध वर्ण स्वर यह इनका विषयारा । देखो० ।
क्षुधा तृषा अरु राग द्वेष रुज सप्त धातु दुखकारा ।
बादर सूक्ष्म स्कन्ध अणु आदिक मूर्ति मई निरधारा । देखो० ।
काय वचन मन स्वासोच्छ्वास जू थावर त्रसकरि डारा ।
'बुध महाचन्द' चेत करि निश दिन तजि पुद्गल पतियारा ॥
। देखो ।

❀ ❀ ❀

अति संक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिनाम बखाने
तीव्र कषाय उदय तैं भावित, दर्वित हिंसादिक अघ[1] ठाने ।
सो संक्लेश भाव फल नरकादिक दुख भोगत असहाने ॥
॥ अति० ॥ १ ॥

शुद्ध उपयोग कारनन में जो राग कषाय मन्द उदयाने ।
सो विशुद्ध तसु फल इन्द्रादिक विभव समाज सकल परमाने ।
॥ अति० ॥२॥

परकारन मोहादिक तैं च्युत[2], दरसन ज्ञान चरन रस साने ।
सो है शुद्ध भाव तसु फल तैं पहुंचत परमानन्द ठिकाने ॥
॥ अति० ॥३॥

इनमें जुगल[3] बन्ध के कारन, पर-द्रव्याश्रित हेय[4] प्रमाने ।
'भागचन्द' स्व-समय निज हित लखितामें, रम रहिये भ्रम हाने
॥ अति० ॥ ४ ॥

---

(१) पाप (२) रहित (३) दो (४) छोड़ने योग्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतम ज्ञानी ॥ टेक ॥
राग दोष पुद्गल की संगति, निहचै शुद्ध निशानी ॥ १॥
जाय नरक पशु नर सुर गति में, ये परजाय विरानी।
सिद्ध-स्वरूप सदा अविनाशी, जानत विरला प्रानी ॥ जा० ॥२॥
किया न काहू हरै न कोई, गुरु शिख[1] कौन कहानी।
जनम-मरन-मल-रहित अमल है, कीच बिना ज्यों पानी ॥जा०॥३॥
सार पदारथ है तिहुं जग में, नहिं क्रोधी नहिं मानी।
'द्यानत' सो घटमाहिं विराजै, लख हूजै शिव थानी ॥ जा० ॥४॥

कर कर आतम-हित रे प्रानी ॥ टेक ॥
जिन परिनामनि बन्ध होत है, सो परनति तज दुखदानी ॥
॥ कर० ॥ १॥
कौन पुरुष तुम कहां रहत हो, किहि की संगति रति मानी।
जे परजाय प्रगट पुद्गलमय, ते तैं क्यों अपनी जानी ॥कर०॥२॥
चेतन-जोति झलक तुझ माहीं, अनुपम सो तैं विसरानी।
जाकी पटतर[2] लगत आन नहिं, दीप रतन शशि सूरानी ॥
आप में आप लखो अपनो पद, 'द्यानत'करि तन-मन-बानी।
परमेश्वर-पद आप पाइये, यौं भाषै केवलज्ञानी ॥ कर० ॥४॥

अरे नर तनको मोह न कर रे, तू चेतन यह जर रे ॥
सपरस पोषि विषय कूं चाहै सो मोरी रही सर रे ॥ १ ॥
रसना क्या न भखो या जग में सब पुद्गल लिये चर रे ॥ २ ॥

---

(१) शिष्य। (२) उपमा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नांक फांक मत फूल घुसेरे, रही सिनक सूं भर रे ॥३॥
जिन आंखन पर गोरी निरखै सो ढीढों रही झर रे ॥४॥
धम-कथा सुन मोक्ष न चाहै तो यह कान कतर रे ॥५॥
तू निरञ्जन है भय-भञ्जन तन कठिन को धर रे ॥६॥
दधिवत मथि षट् मास निरालो भाषत हैं सत गुरु रे ॥७॥
'दृग सुख' होय निजातम दर्शन भवसागर सूं तर रे ॥८॥

★ ★ ★

आप आपने रूप को, जाने सो शिव होय।
पर में अपनी कल्पना, करे भ्रमे जग सोय॥
जो परमातम सिद्ध में, सोई या तन माहिं।
मोह मैल दृग लग रह्यो, तातें सूझत नाहिं॥
मोह मैल रागादि को, जा छिन कीजे नाश।
ता छिन में परमातमा, आपहिं लहै प्रकाश॥
जैसो शिव क्षेत्रहि वसै, तैसो या तन माहिं।
निश्चय दृष्टि निहारते, भेद रंच कछु नाहिं॥
कर्मन के संयोग ते, भयो तीन परकार ★।
एक आतमा द्रव्य को, कर्म नचावन हार॥
कर्मन की जड़ राग है, राग जरे जर जाय।
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय॥
काहे को भटकत फिरे, सिद्ध होन के काज।
राग द्वेष को त्याग दे, भैया सुगम उपाय॥

★ आत्मा तो एक ही है, कर्म-कृत अवस्थाओं के कारण उसके तीन भेद हो रहे हैं:--(१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा और (३) परमात्मा। जिसे आत्मा और परकी भेद-प्रतीति नहीं है, जो शरीर को ही आत्मा समझता है, पर-पदार्थों में मग्न रहता है वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा कहलाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आतम परमातम विषें, शक्ति व्यक्ति गुण भेद ।
नातर उभय समान हैं, कर निश्चय तजि खेद ॥
बन्ध विभाव--प्रसाद हो, शिव स्वभाव से जान ।
बन्ध मोक्ष परिणाम से कारण और न आन ॥
जप तप संयम तव भलो, राग द्वेष जो नाहिं ।
राग-द्वेष के जागते, ये सब सोये जाहिं ॥
राग-द्वेष के नाश ते, परमातम परकाश ।
राग-द्वेष के भासते, परमातम पद नाश ॥
दोष आतमा को यहै, राग द्वेष के संग ।
जैसे पांस मजीठ के, वस्त्र और ही रंग ॥
तैसे आतम द्रव्य को, राग द्वेष के पास ।
कर्म--रंग लागत रहै, कैसे लहे प्रकाश ॥
इन कर्मन को जीतवो, कठिन बात है मीत ।
जड़ खोदे बिन नहि मिटै, दुष्ट जात विपरीत ॥
लल्लो पत्तो के किये, ये मिटवे के नाहिं ।
ध्यान अग्नि प्रज्वाल के, होम देहु तिहि माहिं ॥

बहिरातम ताको कहे, लखै न ब्रह्म-स्वरूप ।
मग्न रहै पर द्रव्य में मिथ्यावन्त अनूप ॥

जिसे आपा पर की भेद-प्रतीत हो गई है वह सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा कहलाता है ।

निज-पर का अनुभव करे, पर तज ध्यावे आप ।
अन्तरात्मा जीव सो नाश करे त्रय ताप ॥

जिस आतमा में अशुद्ध स्वभाव दूर होकर शुद्ध-स्वभाव प्रकट हो गया है, आत्मिक अनन्त गुण प्रकट हो गए हैं वह परमात्मा कहलाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों दारू[1] के गंज[2] को, नर नहिं सकै उठाय।
तनिक अग्नि संयोग सों, छिन इक में उड़ जाय॥
राग द्वेष को त्याग के, धर परमातम ध्यान।
ज्यों पावे सुख-सम्पदा, 'भैया' इम कल्याण॥
जो शुद्धातम अनुभवे, त्याग उपाधिक भाव।
शीघ्र मुक्त पद सो लहै, यों जिनवर दर्शाव॥

भ्रम निवारण

और ठौर क्यों हेरत प्यारे, तेरे ही घट में जानन हारा॥ और॥
चलन हलन थल-वास एकता, जात्यन्तरतै न्यारा न्यारा॥और॥
मोह-उदय रागी द्वेषी ह्वै, क्रोधादिक का सरजन हारा।
भ्रमत फिरत चारों गति भीतर, जनम मरन भोगत दुखभारा॥
गुरु उपदेश लखै पद आपा, तबहि विभाव करै परिहारा।
ह्वै एकाकी 'बुधजन' निश्चल, पावे शिवपद सुखद अपारा॥३॥

साधना का मार्ग

अन्तर उज्ज्वल करना रे भाई! अन्तर उज्वल करना रे॥ टेक॥
कपट कृपान तजै नहीं तबलौं करनी काज न सरना रे॥अंतर०॥
जप तप तीरथ जज्ञ व्रतादिक, आगम[3] अर्थ उचरना रे।
विषय कषाय कीच नहीं धोयो, यों ही पचि २ मरना रे॥०॥
बाहिर भेष किया उर शुचिसों कीये पार उतरना रे।
नाहीं है सब लोक रञ्चना, ऐसे वेदन वरना रे॥ अन्तर॥३॥
कामादिक मल सौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे
'मधुर' नील वसन पर कैसैं, केसर रंग उछरना रे॥अन्तर०।४।

---

(१) बारूद (२) ढेर (३) शास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैराग्य नहीं है विषयों से तो मन उपराम[१] कहाँ से हो ?
शम आदिक का नहिं साधन तो आतम ज्ञान कहाँ से हो ?
तृष्णा न गई तन मन धन से तो अन्तर शाँति कहाँ से हो ?

जब गुल[२] ही नहीं है गुलशन[३] में तो गुल आबाद कहां से हो ?
जब अक़्स होन मुन्सिफ हुआ तब इन्साफ कहां से हो ?

जब कुफ्र[४] की शब[५] नहिं दूर हुई निर्वाण-प्रकाश कहां से हो ?

आकुल रहित होय इमि निश-दिन, कीजे तत्त्व-विचारा हो।
को मैं ? कहा रूप है मेरा ? पर है कौन प्रकारा हो ? ॥टेक॥

को भव-कारण[६] ? बन्ध कहां को ?, आस्रव-रोकन[७] हारा हो।

खिपत कर्म-बन्धन[८] काहे सों ?, थानक[९] कौन हमारा हो ?
इमि अभ्यास किये पावत है, परमानन्द अपारा हो।
'भागचन्द' यह सार जान करि कीजे बारम्बारा हो॥

सुथिर चित करि अहनिशि निश्चय कीजे एम[१०] विचारा हो॥
मैं चित ज्ञान रूप है मेरो पर अजीव निरधारा हो॥ सुथिर०॥
भ्रम भव-कारण दुख बन्धन सम संवर है सुखकारा हो।

---

(१) शांति। (२) फूल। (३) बाग। (४) मिथ्यात्व। (५) अंधेरा। (६) संसार का कारण क्या है ? कर्म क्यों आते हैं। आस्रव। (७) आने वाले कर्म किससे रुकते हैं ? संवर किससे होता है। (८) कर्मों का क्षय किससे होता है ? (९) स्थान। (१०) इस प्रकार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिर विभावता झरण निर्जरा सिद्ध स्वरूप हमारा हो।
सुथिर० ॥ २ ॥
धनि धनि जन जिन यह विचार करि महा-मोह निरवारा हो।
तिनके चरण-कमल प्रति मानिक युगल पाणि शिर धारा हो।
सुथिर० ॥ ३ ॥

अपनी भूल

आत्म दरव को भेद न पायो, पर परणति कर, यह नर जन्म गंवायो ॥
भरम मगल[1] बस, पंच दरव फंसि नट-वत नवरस कर्म नचायो।
सपरस रस अरु गंध वरण स्वर, इनतें पर निज क्यों न लखायो
वंश अगिनि ज्यों, दधि में घृत त्यों; किम तिल तेल जतन बिन पायो ॥
तजि परपंचन, माटी कंचन, ढूंढि निरंजन, सतगुरु गायो।
दृग सुख सिंधन दाह निकन्दन, शूलताल करि ज्ञान सुनायो ॥

पछताना

देखो भूल हमारी, हम संकट पाये ॥ टेक ॥
सिद्ध समान स्वरूप हमारा, डोलूं जेम भिखारी।
पर परणति अपनी अपनाई, पोट परिग्रह धारी ॥
द्रव्य कर्म वश, भाव कर्म कर, निज गल फांसी डारी।
नोकरमन तें मलिन कियो चित, बांधे बन्धन भारी ॥
बोये पेड़ बम्बूल जिन्होंने, खावैं क्यों सहकारी।
करम कमाये आगे आवैं, भोगैं सब संसारी ॥
नैन सुक्ख अब समता धारो, सतगुरु सीख उचारी ॥

---

(१) जादू।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधक की भावना

दुविधा कब जै है या मन की ॥ दुविधा ॥ टेक ॥
कब निज-नाथ निरंजन सुमरौं, तज सेवा जन जन की ॥
कब रुचि सौं पीवें दृग-चातक, बूंद अखय पद घन की ॥
कब शुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की ॥
कब घट अन्तर रहै निरंतर, दिढ़ता सुगुरु वचन की ।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥
कब घर छांड़ होहुँ एकाकी, लिये लालसा वन की ।
ऐसी दशा होय अब मेरी, हौं बलि बलि वा छन की ॥

❀ ❀ ❀

ऐसे विमल भाव जब पावै, तब हम नर-भव सुफल कहावै॥टेक॥
दरश बोध-मय निज आतम लखि, पर द्रव्यनिको नहिं अपनावै ।
मोह-राग-रूप अहित जान तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ॥१॥
कर्म शुभाशुभ बन्ध उदय में, हर्ष विषाद चित्त नहिं ल्यावै ।
निज-हित-हेत विराग ज्ञान लखि तिनसौं अधिक प्रीत उपजावै॥२॥
विषय चाह तजि आत्म-वीर्य सजि, दुखदायक विधि-बन्धखिरावै
'भागचन्द' शिव सुख सब सुखमय आकुलता बिन लखि चितचावै

★ ★ ★

निज आतम कब ध्याऊंगा मैं निज आतम कब ध्याऊंगा ।
कब निज नाथ निरजंन लख के ताही में रम जाऊंगा ।
कब रज-रहस--वेदनी- आयु अरि-कुल-नाम नशाऊंगा ।
तन तज रागादिक पर कृत-लख इनको अति विलगाऊंगा ॥१॥
रूप गन्ध रस फरस बिना चिन्मूरति निज प्रगटाऊंगा ।
'दासोऽहं' तज,भज 'सोहं' पुनि अहंअहं मय थाऊंगा ॥२॥
दर्शन ज्ञान चरण के विकलप सब ही दूर भगाऊंगा ।
'दीप' आप में आपहि लखकर, आप ही आप रहाऊंगा ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधक का निश्चय

बाबा ? मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ।। बाबा० ।। टेक ।।
सुर नर नारक तिरयक गति में मोको करमन घेरा रे ।।बाबा. ।१।।
मात पिता सुत तिय कुल परिजन, मोह गहल उलझेरा रे।
तन धन वसन भवन जड़ न्यारे,हूं चिन्मूरति न्यारारे।।बाबा.।।२।।
मुझ विभाव जड कर्म रचत हैं, करमन हमको फेरा रे ।
विभाव चक्र तजि धारि सुभाव, अब आनन्द घन हेरा रे ।बा०।३
खरच खेद नहिं अनुभव करते, निरखि चिदानन्द तेरा रे।
जप तप व्रत श्रुत सार यही है, 'बुधजन, कर न अवेरा रे ।बाबा।४

★ ★ ★

अब हम अमर भये न मरैंगे । टेक ।। ।।
तन-कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों करि देह धरैंगे ।।अब० ।।१।।
उपजैं मरै काल तैं प्रानी, तातैं काल हरैंगे ।
राग दोष जग बन्ध करत हैं, इनको नाश करैंगे ।। अब० ।।२।।
देह विनाशी मैं अविनाशी भेद—ज्ञान पकरेंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे हो निखरेंगे ।। अब० ।। ३ ।।
मरे अनन्त बार बिन समझे, अब सब दुख बिसरैंगे ।
द्यानत, निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरे सुमरेंगे ।।अब० ।।४।।

आत्म निरीक्षण

भाई ? अब मैं ऐसा जाना ।। टेक ।।

पुद्गल दरब अचेत भिन्न है मेरा चेतन बाना[1] ।। भाई० ।। १।।
कलप अनन्त सहत दुख बीते, दुख कौं सुख कर माना ।

(१) स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुख दुख दोऊ कर्म अवस्था, मैं कर्मन तै आना[1] ॥ भाई० ॥ २ ॥
जहाँ भोर[2] था तहाँ भई निशि[3], निशि की ठौर बिहाना[4]।
भूलमिटी निज--पद पहिचाना, परमानन्द निधाना ॥भाई० ॥३॥
गूंगे का गुड़ खांय कहें किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना।
'द्यानत' जिन देख्या ते जानै, मेंडक हंस पखाना ॥ भाई० ॥ ४ ॥

★ ★ ★

आपा प्रभु जाना मैं जाना ॥ टेक ॥
परमेसुर यह मैं इस सेवक, ऐसो भर्म पलाना ॥
जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मन सो भगवाना ॥
मरमी होय सोइ तो जानै, जाने नाहीं आना ॥ २ ॥
जाको ध्यान धरत हैं मुनिजन पावत हैं निरवाना[5] ॥
अर्हंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आतम रूप बखाना ॥ ३ ॥
जो निगोद में सो मुझ माहीं, सोई है शिव-थाना ॥
'द्यानत' निहचैं रंक फेर[6] नहिं, जानैं सो मतिवाना ॥ ४ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

आतम जाना, मैं जाना ज्ञान सरूप ॥ आतम० ॥ टेक ॥
पुद्गल धर्म अधर्म गगन[7] जम[8], सब जड़ मैं चिद्रूप ॥

---

(१) भिन्न (२) प्रभात (३) रात (४) प्रभात (५) मोक्ष (६) फर्क (७) आकाश (८) काल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ २ ३
दरव-भाव-नोकर्म, न्यारे न्यारो आप अनूप ॥ आतम० ॥ २ ॥
'द्यानत, पर परनति कब बिनसै तब सुख बिलसैं भूप ॥आतम०॥

★ ★ ★

मैं एक शुद्ध ज्ञाता, निरमल सुभाव राता ॥टेक॥
दृग-ज्ञान-चरन धारी, थिर चेतना हमारी ॥ मैं० ॥ १ ॥
४ ५
तिहुंकाल परसों न्यारा, निरद्वन्द्व निरविकारा ॥मैं०॥ २ ॥
आनन्द कन्द चन्दा, द्यानत जगत सन्दा ॥मैं०॥३॥
अब चिदानन्द प्यारा हम आप में निहारा ॥मैं०॥४॥

❀ ❀ ❀

मैं देखा आतमरामा ॥मैं० ॥ टेक ॥
रूप फरस रस गन्ध तैं न्यारा दरस-ज्ञान-गुन धामा।
नित्य निरंजन जाके नाहीं क्रोध लोभ मद कामा ॥मैं० ॥१॥
भूख प्यास सुख दुख नहिं जाके, नाहीं वन पुर गामा।
नहिं साहिब नहिं चाकर भाई नहीं तात नहिं मामा ॥मैं०॥
भूलि अनादि थकी जग भटकत, लै पुद्गल का जामा।
'बुधजन' संगति जिन--गुरुकी तैं मैं पाया मुझ ठामा।मैं०॥३॥

❀ ❀ ❀

हम लागे आतम राम सों ॥ टेक ॥
विनाशीक पुद्गलकी छाया, कौन रमैं धन-मानसों ॥हम०॥१॥

---

[१]द्रव्यकर्म-ज्ञानावरण आदि [२] भावकर्म राग द्वेष आदि विभाव [३] नोकर्म-शरीर [४] रागद्वेषादि रहित [५] स्वभाव के परिवर्तन रहित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समता सुख घट में परगास्यो, कौन काज है काम सों।
दुविधा-भाव जलांजुलि दीनौं, मेल भयो निज स्वाम सों ॥२॥

भेद ज्ञान करि निज पर देख्यो, कौन विलोकै चाम[1] सों।
डरै परै की बात न भावै, लौ लाई गुण-ग्राम सों ॥ हम० ॥३॥

विकलप भाव रंक सब भाजे झरि[2] चेतन अभिराम सों।
'द्यानत' आतम अनुभव करि के, छूटे भवदुख धाम सों ॥४॥

★ ★ ★

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा ॥ टेक॥
तन-सम्बन्धी सब परिवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ॥हम॥१॥
पुन्य उदय सुख का बढवारा, पाप उदय दुख होत अपारा।
पाप पुन्य दोऊ संसारा, मैं सब देखन जानन हारा ॥ हम०॥२॥
मैं तिहुं जग तिहुं काल अकेला, पर-संजोग भला बहु मेला।
थिति पूरी करि खिर खिर जाहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ॥३॥
राग भावतैं सज्जन मानैं दोष भावतैं दुर्जन जानैं।
राग दोष दोऊ ममनाहीं, 'द्यानत' मैं चेतन पद माहीं ॥हम॥४॥

स्वरूप-चिंतन

दुनियां में सब से न्यारा, यह आत्मा हमारा।
सब देखन जानन हारा, यह आतमा हमारा ॥टेक॥
यह जले नहीं अग्नि में, भींगे न कभी पानी में।
सूखे न पवन के द्वारा, यह आतमा हमारा ॥१॥
शस्त्रों से कटे नहीं काटा, नहिं तोड़ सके कोई भाटा।

---

(१) चमड़ा, पुद्गलमयी आंख (२) दूर होकर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरता नां मरी का मारा, यह आतमा हमारा ॥२॥
मां बाप सुता सुत नारी, झूठे झगड़े संसारी।
नहीं कोई देत सहा।, यह आतमा हमारा ॥३॥
मत फँस मोह--ममता में, 'मक्खन आजा आपा में।
तन धन कछु नहीं तुम्हारा, यह आतमा हमारा ॥४॥

★ ★ ★

मोह का जाल पड़ा था, मुझे मालूम न था।
दुख देते हैं सुना था, मुझे मालूम न था ॥
भूल अपने को गया, मोह के फन्दे पड़कर।
पास में कौन था क्या था, मुझे मालूम न था ॥१॥
१
देखता सब फिरा नाभि की खुशबू -ए-महक।
आप में आप छिपा था, मुझे मालूम न था ॥२॥
मैं समझता ही रहा यह 'औ' वह भी अपना।
२
जिस्म भी मुझसे जुदा था मुझे मालूम न था ॥३॥
अपनी गल्ती से ही बन्धन में पड़ा था 'भगवत्'।
जीव कर्मों से रिहा था, मुझे मालूम न था ॥४॥

आतम--ज्ञानी के स्वरूप चिंतन का प्रकार

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसैं, आतम रूप अबाधित ज्ञानी।टेक।
रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी।
३ ४ ५ ६ ७
दहन दहत ज्यों दहन तद्गत गगन दहन ताकी विधि ठानी।१।

---

(१) गन्ध (२) शरीर (३) अग्नि (४) जलाना (५) काष्ठ (६) उसमें रहने वाले (७) आकाश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरणादिक बिकार पुद्गल के, इनमें नहिं चैतन्य निशानी ।
यद्यपि एक-क्षेत्र-अवगाही[१], तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥२॥
मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस, लवण-खिल्ल-वत[२] लीला ठानी ।
मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत पर-परनति हित मानी ॥३॥
'भागचन्द्र' निरद्वन्द्व निरामय, मूरति निश्चय सिद्ध-समानी ।
नित अकलंक[३] अवंक[४] शंक बिन, निर्मल पंक[५] बिना जिमि पानी ॥४॥

स्वरूप-चिन्तन का फल

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै ।
और कछु न सुहावै, जब आतम अनुभव आवै ॥ टेक ॥
रस नीरस हो जात ततच्छिन[६], अच्छ[७] विषय नहीं भावै ॥ १ ॥
गोठी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गल-प्रीति नसावै ॥ ५ ॥
राग दोष जुग चपल पक्ष जुत मन-पक्षी मर जावै ॥ ३ ॥
ज्ञानानन्द सुधारस उमगै घट अन्तर न समावै ॥ ४ ॥
'भागचन्द' ऐसे अनुभव के हाथ जोरि सिर नावै ॥ ५ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

जब तैं अपनो जिउ आप लख्यो, तब तैं जु मिटी दुविधा मन की ।
यों सीतल चित्त भयो तबहीं सब छांड दई ममता तनकी ॥
चिंतामणि जब प्रगट्यो घर में तब कौन जु चाह करै धन की ।
जो सिद्ध में आपु में फेर न जाने सो क्यों परवाह करै जन की ॥

---

(१) एक ही स्थान में रहना (२) नमक की डली की तरह (३) सरल (४) भय (५) कीचड़ (६) उसी समय (७) इन्द्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज आंतम को जब आतम में, लिया देख आतम की आंखों से।
परकाश हुआ परमातम का तब कोई भेद छुपा न रहा ॥
पर को छोड़ लखा अपने में भिन्न लखा निज को परसेती।
'न्यामत' आपापर—भेद मिटा पर का लवलेश लगा न रहा।

❀ ❀ ❀ ❀

अब वरतै सुख छिन छिन छिन।
आपापर लखि भिन भिन भिन ॥ टेर ॥
दर्शन ज्ञान स्वरूप तिहारो, सो बाढ़त मोहे दिन दिन दिन ॥१॥
देहादिक पर-द्रव्य न मेरे, सो भासत मोहे घिन घिन घिन ॥२॥
'राम' कहै निज आतम ध्याओ, कै ध्याओ श्रीजिन जिन जिन ॥३॥

स्वरूप-परिचय

आतम जाना रे भाई ! ॥ टेक ॥
जैसी उज्ज्वल आरसी[१] रे तैसी आतम जोत[२]।
काया[३] करमन[४] सों जुदी रे, सबको करै उदोत[५] ॥ आतम० ॥ १
शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलप रूप।
निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानंद चिद्रूप ॥आतम०॥२॥
तन वच सेती भिन्न कर रे, मन सों निज लौं लाय।
आप आप जब अनुभवै रे, तहां न मन वच काय ॥आतम०॥३॥
छहौं दरब[६] नव तत्त्व[७] तैं रे, न्यारो आतम राम।

---

(१) दर्पण, काच (२) प्रकाश (३) शरीर (४) कर्म (५) प्रकाश। (६) छह द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। (७) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'द्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिवधाम ॥ आतम०॥४॥

❋ ❋ ❋ ❋

आतम जान रे जान रे जान ॥ टेक ॥
जीवन की इच्छा करै, कबहुं न मांगे काल ।
(प्राणी !) सोई जान्यो जीव है, सुख चाहै दुख टाल ॥आतम॥१
नैन[1] वैन[2] में कौन है, कौन सुनत है बात ।
(प्राणी !) देखत क्यों नहिं आप में, जाकी चेतन जात[3] ॥आतम०॥२
बाहिर ढूँढैं दूर है, अन्तर निपट[4] नजीक ।
प्राणी ? ढूंढन वाला कौन है, सोई जानो टीक ॥ आतम०॥३॥
तीन भुवन में देखिया, आतम सम नहिं कोय ।
(प्राणी) 'द्यानत' जे अनुभव करैं तिनकौं शिवसुख होय॥आतम॥

❋ ❋ ❋ ❋

आतम रूप सुहावना, कोई जानै रे भाई ।
जाकै जानत पाइये, त्रिभुवन—ठकुराई[5] ॥ टेक ॥
मन इन्द्री न्यारे करौ, तन और विचारौ ।
विषय विकार सब मिटैं, सहजैं सुख धारौ ॥ आतम० ॥ १ ॥
बाहिर तैं मन रोक कैं, जब अन्तर आया ।
चित्त कमल सुलझ्यो तहां; चिनमूरति पाया ॥ आतम० ॥ २ ॥
पूरक[6] कुम्भक रेचतैं, पहिलैं मन साधा ।
ज्ञान पवन मन एकता, भई सिद्ध समाधा ॥ आतम० ॥ ३ ॥
जिनि इहि विध मन वश किया, तिन आतम देखा ।
'द्यानत' मौनी ह्वै रहे, पाई सुख रेखा ॥ आतम० ॥ ४ ॥

---

(१) नेत्र, आंख (२) वचन (३) स्वभाव (४) बिल्कुल । (५) स्वामित्व (६) स्वास को बाहर से भीतर भरना पूरक, अन्दर रोक रखना-कुंभक और भीतर से बाहर निकालना-रेचक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी।

जैसे निरख[१] मरीचिका, मृग मानत पानी ॥ ऐसैं० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैल का, विषया—रस त्यों ही।

ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही ॥ ऐसैं० ॥ २ ॥

देह अपावन खेट[२] की, अपनी करि मानी।

भाषा मनसा करम की, तैं निज कर जानी ॥ ऐसैं ॥ ३ ॥

नांव[३] कहावति[४] लोक की, सो तौ नहिं भूलै।

जाति जगत की कल्पना, तामैं तू भूलै ॥ ऐसैं० ॥ ४ ॥

मांटी भूमि पहार[५] की तुह सम्पति सूझै।

प्रगट पहेली-मोह की, तू तऊ[६] न बूझै ॥ ऐसैं० ॥ ५ ॥

तैं कबहू निज गुन विषै, निज दृष्टि न दीनी।

पराधीन पर—वस्तु सों, अपनायत कीनी ॥ ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सों ढूंढ़त वन दौरैं।

त्यों तुझ में तेरा धनी, तू खोजत औरैं ॥ ऐसैं० ॥ ७ ॥

करता भरता भोगता, घट सों घट माहीं।

ज्ञान बिना सद्‌गुरु बिना तू समुझत नाहीं ॥ ऐसैं० ॥ ८ ॥

❀ ❀ ❀ ❀

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पण्डित प्रानी।

ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी ॥ ऐसैं० ॥ ९ ॥

---

(१) देख कर। (२) हंबिया। (३) नाम। (४) कहावत। (५, पहाड़ (६) तो भी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों रसलीन रसायनी रसरीति अराधै।
त्यों घट में परमारथी, परमारथ साधै ॥ ऐसैं० ॥ २ ॥
जैसैं वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।
तैसें पण्डित पिंड[1] की, रचना निरवारै ॥ ऐसैं० ॥ ३ ॥
पिंड—स्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।
जानैं मानैं रमि रहै, घटव्यापक सोई ॥ ऐसैं० ॥ ४ ॥
चेतन लच्छन[2] है धनी[3], जड़ लच्छन काया।
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया ॥ ऐसैं ॥ ५ ॥
लच्छन भेद विलेच्छ को सु विलच्छन[4] वेदै[5]।
सत्त[6] सरूप हिये धरैं. भ्रम[7] रूप उछेदै[8] ॥ ऐसैं० ॥ ६ ॥
ज्यों रज[9] सोधैं[10] न्यारिया, धन सौ मनकी लैं।
त्यों मुनि कर्म—विपाक[11] में, अपने रस झीलैं[12] ॥ ऐसैं० ॥ ७ ॥
आप लखैं अब आपको, दुविधापद मेटे।
सेवक साहिब एक है, तब को किहिं भेटैं ॥ ऐसैं० ॥ ८ ॥

❀ ❀ ❀

प्राणी ! आतम रूप अनूप है, परतैं भिन्न त्रिकाल ॥प्राणी० ।.टेक
यह सब कर्म—उपाधि है, राग दोष भ्रम जाल ॥ प्राणी० ॥ १ ॥

---

[१] शरीर [२] लक्षण [३] जीव [४] चतुर, ज्ञानी [५] जानना [६] सत्य [७] मिथ्या [८] हटाया है [९] मिट्टी [१०] शुद्ध करता है, खोजता है। [११] फल [१२] मग्न रहना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा भयो काई लागो, आतम—दरपन[1] माहिं।
ऊपरली ऊपर रहै, अन्तर पैठी[2] नाहिं ॥ प्राणी० ॥ २ ॥
भूलि जेवरी[3] अहि[4] मुन्यो[5], ठूंठ लख्यो नर—रूप।
त्यों ही पर निज मानिया, वह जड़ तू चिद्रूप ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥
जीव—कनक[6] तन—मैल के, भिन्न भिन्न परदेश[7]।
माहैं माहैं संघ[8] है, मिलैं नहीं लवलेश[9] ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥
घन[10]—करमनि आच्छादियो[11], ज्ञान—भान[12]—परकाश।
है ज्यों का त्यों शाश्वता[13], रंचक[14] होय न नाश ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥
लाली झलकै फटिक[15] में, फटिक न लाली होय।
पर—संगति—परभाव[16] है, शुद्ध—स्वरूप न कोय ॥ प्राणी० ॥६॥
त्रस थावर नर नारकी, देव आदि बहु भेद।
निहचै एक स्वरूप हैं, ज्यों पट सहज[17] सुफेद ॥प्राणी०॥७॥
गुण ज्ञानादि अनन्त हैं, परजय[18] सकति अनन्त।

---

[१] काच [२] बैठी [३] रस्सी [४] सांप [५] समझा [६] सोना [७] प्रदेश [८] मेल [९] किंचित मात्र [१०] बादल [११] ढंका हुआ [१२] सूर्य [१३] सदा [१४] जराभी [१५] स्फटिक मणि [१६] प्रभाव, असर [१७] स्वभावतः [१८] पर्याय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'द्यानत' अनुभव कीजिये, याको यह सिद्धान्त ।।प्राणी०।।८।।

अपने शुद्ध आत्मा का ध्यान करो या सिद्ध परमात्मा का ध्यान करो कोई अन्तर नहीं। अपना शुद्ध आत्मा व सिद्धों का आत्मा दोनों ही ज्ञानादि स्वरूप, आनन्दमय, अमूर्त्तिक, लोक के समस्त पदार्थों से उत्तम, कर्म व नोकर्म से रहित, संसार के समस्त पदार्थों को एक साथ ठीक-ठीक देखने व जानने वाले, आकुलता रहित, अनन्त गुण सम्पन्न व शुद्ध चिद्रूप हैं। अपने आत्मा में शक्ति विद्यमान है और सिद्धात्मा में वह पूर्ण व्यक्त हो चुकी है इतना ही भेद है।

ज्ञान आदि आत्मा के गुण हैं। गुण गुणी (पदार्थ से) भिन्न नहीं रहते और गुणी (पदार्थ) भी गुणों से प्रथक् नहीं पाया जाता, गुण रूप ही होता है अतः आत्मा ज्ञानादि स्वरूप है।

कषाय—राग, द्वेष, मोह जो सुख के वाधक हैं, आत्मा के गुण नहीं हैं। वस्तुतः इनका आत्मा से कोई सम्वन्ध नहीं अतः आत्मा आनन्दमय है।

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द आत्मा के गुण नहीं हैं। आत्मा इनसे रहित है इसलिए वह इन्द्रियों के अगोचर है। क्योंकि स्पर्श के अभाव से स्पर्शन इन्द्रिय से, रस के अभाव से रसना इन्द्रिय से, गन्ध के अभाव से घ्राण इन्द्रिय से, वर्ण के अभाव से चक्षु इन्द्रिय से और शब्द के अभाव से श्रोत्र इन्द्रिय से आत्मा का ग्रहण या ज्ञान नहीं होता। यह स्पर्श, रस आदि पुद्गल के गुण हैं इसलिए इनको ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के द्वारा पुद्गल का ही ज्ञान होता है, आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आत्मा का ज्ञान तो अनुभव से या भावना द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वानुभव से होता है। इसलिए इन्द्रियों का विषय न होने से आत्मा अमूर्तिक [रूप, रस, गन्ध,स्पर्श रहित] है।

लोकमें छह द्रव्य हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें जीव के अलावा पांच द्रव्य जड़ हैं। वे ज्ञेय (ज्ञान के विषय) और दृश्य (दर्शन के विषय) ही हैं। उनमें ज्ञान और दर्शन न होने से देखने व जानने की शक्ति नहीं है। किन्तु जीव-आत्मा ज्ञेय और दृश्य होने के अतिरिक्त ज्ञाता और दृष्टा (जानने और देखने वाला) भी है। इसलिए लोक में सब से उत्तम है।

लोकाकाश में २२ प्रकार की पुद्गल-वर्गणाएं (परमाणु) भरी हुई हैं। उनमें से तीन शरीर--औदारिक, वैक्रियिक और आहारक की छह पर्याप्तियों—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को कहते हैं—नोकर्म वर्गणा। ज्ञानावरण आदि कर्मों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को कहते हैं—कर्म वर्गणा। यह आत्मा वस्तुतः कर्म और नोकर्म से रहित है मगर आत्मा और पुद्गल में विभाव रूप परिणमन की एक शक्ति है। उसके कारण अनादि काल से ऐसा होता है कि जिस तरह चिकनाई से युक्त पदार्थ पर पवन से प्रेरे हुए धूल के कण आकर चिपक जाते हैं उसी प्रकार जब आत्मा विभाव रूप परिणमन करता है रागद्वेषादि भाव करता है तब कार्माण वर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म रूप परिणत होकर आत्मा से चिपक जाती हैं। इसी के कारण नोकर्म (शरीर) के योग्य पुद्गल-वर्गणा आकर शरीर बना देती हैं और इस दृश्यमान शरीर के मोह में फँस कर अपने आप को भूला हुआ यह प्राणी पुनः २ जन्म-मरण किया करता है। जब इसके घट में भेद विज्ञान की ज्योति जागृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है यह विभाव भाव से प्रथक स्वभाव की ओर दृष्टि डालता है तो शरीर आदि पर पदार्थों से विरक्त होकर स्व-स्वरूप में लीन हो जाता है। तभी इनके कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा होने लगती है और यह सब कर्मों से रहित हो अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तथा समस्त जगत् के पदार्थों को जिस जिस रूप से वे स्थित हैं उसी रूप से एक साथ उन सब को देखने जानने लगता है।

राग, द्वेष आदि विभाव भावों से रहित होने से आकुलता रहित हो जाता है।

विभाव भाव-अवगुण दूर हो जाते हैं, स्वभाव प्रगट हो जाता है तो गुण ही गुण रह जाते हैं इसलिए अनन्त गुणों का भण्डार बन जाता है।

ज्ञान और दर्शन का नाम चित् है। जिसमें वह विद्यमान हो वह है चिद्रूप। जिस प्रकार कीट, कालिमा आदि अन्य द्रव्यों से रहित स्वर्ण शुद्ध-स्वर्ण कहलाता है उसी प्रकार जब यह चिद्रूप (आत्मा) समस्त पर-द्रव्यों से रहित हो जाता है तब शुद्ध चिद्रूप कहलाता है।

जिन की बुद्धि विमल है, जो स्व और पर का विवेक रखने वाले हैं, उनको चाहिए कि वे 'अहं' 'अहं' इस अन्तर्मुखाकार प्रत्यक्ष से अपना अनुभव करके यह निश्चय करें कि वह शुद्ध चद्रिूप मैं हूं। शुद्धोऽहं', 'सिद्धोऽहं', चिद्रूपोऽहं यही भावना अपने को सिद्ध बनाने वाली है।

यह पर-पदार्थों की ओर से मन को हटाकर अपने आत्म स्वरूप में लीन करने का एक मार्ग है। जो साधक पाखण्ड छोड़ कर उक्त रीति से अभ्यास करेगा उसके अवश्य ही शरीरादि पर पदार्थों से प्रेम की कमी होगी, समस्त पर-पदार्थों से राग-द्वेष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घट कर समताके सुख की वृद्धि होगी। आत्मिक परमानन्द का आस्वाद उसे मिलने लगेगा। अभ्यास के बल से ज्यों ज्यों वह अपनी साधना में दृढ होता जायगा त्यों-त्यों उसे अधिकाधिक मजा आने लगेगा। एकाग्रचिन्तानिरोध या आत्म-ध्यान के द्वारा वह आत्मिक रस-सागर में अधिकाधिक मग्न होने लगेगा। यही साधना का प्रयोजन है।

एकाग्रचिंतानिरोध या ध्यान के विना आत्मा में मग्नता अधिक समय तक नहीं हो सकती। इसलिए इस सीढी पर पहुंचने पर मुमुक्षु को ध्यान का अभ्यास बढाना चाहिए।

आज्ञाविचय—भगवान् की आज्ञानुसार संसार व अपनी अन्तरंग स्थिति का विचार करना. संसार को अशरण, अशुभ, अनित्य, दुःख और अनात्म-रूप विचार करना। **अपायविचय या उपायविचय**--संसार में दुःख भोगने वाले प्राणियों अपने व दूसरों के दुःख दूर कैसे होवें या संसारी प्राणी के कल्याण का मार्ग क्या है यह चिंतन करना। **विपाक विचय**—जो कुछ भी जीव को सुख या दुःख मिलता है यह अपने किए हुए कर्मों का फल है, अनुकूल परिस्थिति में इतराने और प्रतिकूल परिस्थिति में घबरा उठने की आवश्यकता नहीं। जैसी करनी वैसी भरनी। जैसे कर्म पहले किए उनका फल अब तक मिला और मिल रहा है। अब जैसा करेंगे वैसा आगे मिलेगा-इत्यादि विचार करना,*

---

* किसी ने अच्छा कहा है:—जो कुछ हमें मिला है और मिल रहा है वह हमारे ही कर्मों का फल है। मन में शान्ति रखिए। व्यर्थ हाय हाय से क्या लाभ ? यदि इस समय प्राप्त हुआ कांटा आपको नहीं भाता तो अलग अवसर के लिए फूलों के बीज बोइए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थान विचय—लोक के स्वरूप का विचार करना कि इस पुरुषाकार लोक–संस्थान में जीव को कहीं सुख नहीं है। आकुलता सब जगह सताती है। इसमें भ्रमण न हो तभी जीव का कल्याण हो सकता है और उसे परम शान्ति मिल सकती है--इत्यादि विचार करना धर्म्य-ध्यान है। निर्लिप्त होकर किसी भी वस्तु या विषय के विचार में मग्न होना भी धर्म्य-ध्यान है। आत्मा की शुद्धि के लिए पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत चार प्रकार के ध्यान बताये गये हैं। यह ध्यान का विषय जरा गहन है। इसके लिए एतद्विषयक ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थ या हमारे दूसरे ग्रन्थ संयम-प्रकाश के ध्यान प्रकरण को देखना चाहिए। यह प्रयास सर्व-साधारण का आत्मा से परिचय कराने और उसकी साधना की पहली सीढ़ी बताने मात्र के लिए है। दुनिया के गहन पंक जाल में फँसे हुए मनुष्य यदि इतना करना भी सीख लेंगे तो वे अपने कल्याण के मार्ग में अपने आप चलने लगेंगे और अपना उद्धार करने में समर्थ होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

उक्त रीति से आनन्द का अनुभव करते हुए शुद्धात्मा में मग्न होकर सामयिक का समय बिताने के पश्चात् साधकों का कर्तव्य है कि वे उठने या वहां से अन्यत्र जाने से पहले पूर्ववत चारों दिशाओं में नौ नौ बार णमोकार मन्त्र बोल कर तीन-तीन आवर्त्त और एक एक शिरोनति करके पश्चात् अष्टांग नमस्कार करके सामायिक की विधि पूर्ण करें।

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि जिसका व्यावहारिक जीवन पवित्र या सुधरा हुआ नहीं है उसका उद्धार हो सकना कठिन होता है। इसलिए आत्म—साधना में प्रवृत्ति होने से पहले या उसके साथ ही अपने व्यावहारिक जीवन को सुधारने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और सात्विक बनाने के लिए भी काफी प्रयत्न करना चाहिए।

व्यावहारिक जीवन में पवित्रता लाने या पापों से बचने के लिए पहली बात यह है कि मनुष्य कोई काम छिपाकर कर लेने की आदत न रखे। मतलब यह है कि जब कभी किसी ऐसे काम को करने का विचार होवे, जो समाज के लिए अपने संबन्ध के विचार से अनुचित हो और उसे छिपाकर करने का विचार हो रहा हो तो उसे करने के विचार को तुरन्त छोड़ दे। यदि मनुष्य इस प्रवृत्ति को काम में लाना सीखेगा तो बहुत से पापों से बच जायगा।

दूसरी बात यह है कि ऐसा कोई कार्य न करे, जिस के बाद झूठ बोलना पड़े। इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि किसी परिस्थिति में कोई बुरा काम भी अपने से हो जाय तो उसके बाद कभी झूठ न बोले—इस सचाई के अभ्यास से भी आत्मा बुरे कामों से बचेगा।

तीसरी बात यह है कि अपने लिए या दूसरे के लिए कभी बुरा संकल्प न करे। बुराई या अनिष्ट के विचार भी मनमें न लावे।

मैत्री आदि भावनाओं को अपने जीवन में उतारे। किसी को कष्ट न दे।

प्रतिदिन आत्म-निरीक्षण अवश्य करे। रात को सोते समय या अन्य किसी अवकाश के समय यह अवश्य सोचे कि किस किस अवसर पर मुझ में शिथिलता आई और मैं अपने मार्ग से हटा।

बहुत से आदमियों का जीवन-सुधार इसलिये नहीं हो पाता कि उनके जीवन में नियमितता नहीं होती न खाने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियम, न पीने का नियम, न सोने का नियम, न बोलने का नियम। किसी भी बात के मर्यादित न होने से उन्हें व्यवहार में भी अन्यान्य प्रकार की आकुलताएं सताया करती हैं, जिस से उनका जीवन सर्वदा दुःखी बना रहता है। इसलिए नियमितता का होना जरूरी है। आप अपने लिए कुछ नियम बना लीजिए और फिर उनमें आबद्ध रहिए, आपका जीवन अवश्य सुधरेगा। जैसे—

१ **भोजन**—भोजन के सम्बन्ध में स्वास्थ्य के नियमों पर पूरा ध्यान रखना। अभक्ष्य नहीं खाना, जो अपनी प्रकृति के अनुकूल न हो उसे नहीं खाना। मोटे हाथ की चक्कीके पिसे आटेकी वस्तुएं ही खाना बासी और बाजारू अस्वच्छ वस्तुएं न खाना। नियत समय पर खाना। इतना नहीं खाना कि जिससे सुस्ती आजाय।

२ **स्वच्छता**—शरीर, कपड़े और अपने घर आदि की किसी भी वस्तु में अस्वच्छता न रहने देना।

३ **व्यवस्था**—अपना प्रत्येक कार्य नियमित समय पर करना। नियमित समय पर उठना, सोना, भोजन आदि करना। किसी से मिलने जाना हो तो समय का ध्यान रखना। अपनी प्रत्येक वस्तु को उस के योग्य निश्चित स्थान पर रखना।

४ **आय व्यय**—न्याय नीति से कमाना और उसे अपने तथा दूसरों के भले के कामों में खर्च करना। व्यर्थ न उड़ाना। मितव्ययी बनना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५ व्यवसाय—अपने योग्य कोई उत्तम व्यवसाय चुनना, जिसमें अपने शरीर और मन को न वेचना पड़े। अपने विचारों को दबाना पड़े तो उस व्यवसाय को कदापि न करना।

६ उद्योग—व्यर्थ के कार्यों को छोड़ देना और उपयोगी कार्यों में लगे रहना, समय को व्यर्थ न खोना।

७ दृढ़ संकल्प—जो कुछ करना हो उस पर पहले खूब सोच लेना। कर्त्तव्य जँचे तो उसे अवश्य करना। बार बार कठिनाइयां आने पर भी उससे मुंह न मोड़ना, जब तक पूरा न हो तब तक उसमें जुटे रहना और यदि अकर्त्तव्य हो तो कभी न करना।

८ संतोष—जितना जो कुछ मिला है उसमें असन्तोष का अनुभव न करना किन्तु उसी में अपना निर्वाह कर आनन्दित रहना।

९ स्वावलंबन—जहां तक हो अपना काम अपने हाथों से करने का अभ्यास डालना और उसमें लज्जा का अनुभव न करना।

यही कुछ जीवनोपयोगी नियम हैं, जिनसे जीवन सुधार हो सकता है और आकुलता कम हो सकती है। यही स्वार्थ है और परमार्थ भी। जो इस पर ध्यान देगा वह आत्मसाधना में अवश्य सफल होगा। मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरों के पतित जीवन पर ध्यान न देकर अपने सुधार में लगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य जब अपनी ओर ध्यान देगा तो अपने में हजारों बुराइयां नजर आने लगेंगी। दूसरों की अपेक्षा भी अपने में अधिक अवगुण दिखाई देने लगेंगे।

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥"

"न थी अपने गुनाहों की जब तक खबर
रहे देखते औरों के ऐबों हुनर।
पड़ी अपने गुनाहों पर जो नजर
तो निगाह में कोई बुरा न रहा॥"

यदि वास्तव में देखें तो प्रत्येक मनुष्य बुराइयों और अवगुणों का पिंड है। कोई यह न समझे कि मुझ में बुराइयाँ नहीं हैं। बुराइयां सब में हैं और जब तक वह उन्हें खोज-खोज कर दूर न करेगा तब तक जीवन-सुधार या आत्मोद्धार कभी न होगा। पर्वत पर लगी हुई अग्नि देखने से ही अपना भला नहीं, अपना बचाव व भला तो अपने पास लगी हुई अग्नि के देखने से ही हो सकता है। दूसरों के अवगुणों की अपेक्षा अपने अवगुणों पर ध्यान देने में ही अपना भला है। किसी ने कहा है:—

"औरों की बुरी बात तो भाती नहीं तुम को।
पर अपनी बुराई नजर आती नहीं तुमको॥"

यही अपने सुधार में बाधा है। दूसरों की तरह अपने अवगुण पर भी ध्यान जाय और उन्हें समूल उखाड़ फेंकने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का प्रयत्न किया जाय तो आत्मा सोना हो जाय। इसलिए यही कहना है कि अपनी ओर दृष्टि दीजिए। सन्मार्ग में पूरे नहीं बढ़ सकते तो थोड़े तो बढ़िए। आपका सुधार होगा।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति॥

शुभम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भजन

जिन्हों के दर्श करने को, भव्य प्राणी तरसते थे।
हरषते नाम सुन सुनकर यही वे सूर्यसागर हैं॥ टेक॥
जगाया जैन जाती को, बताया सत्य शिव मारग।
मिटाई फूट आपस की, यही वे सूर्यसागर हैं॥ १॥
नहीं है प्रेम भक्तों से, नहीं है द्वेष द्रोही से।
नजर है एक सी सब पै यही वे सूर्यसागर हैं॥ २॥
सौम्य मुस्कान सूरत है, सरल मृदु बैन बोले हैं।
कपट अभिमान नहिं जिनकें, यही वे सूर्यसागर हैं॥३॥
सूर्य की ज्योति के आगे, छिपाते दोष को अपनें।
दबी है चन्द्र की आभा, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ४॥
नहीं अटवी भयानक है, नहीं मरघट डरावन है।
नहीं अहि व्याघ्र की शंका, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ५॥
अनेकों ही अजैनों को, लगाया जैन मारग में।
दिपाई जैन मुनि मुद्रा, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ६॥
सहे हिम धूप की वाधा, न डर तूफान वर्षा का।
अकंपन आत्मा जिनकी, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ७॥
श्रेष्ठ आदर्श साधू हैं, अचल चारित्र है जिनका।
आर्ष मार्गानुगामी हैं, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ८॥
परीक्षा की कसौटी पर, मुनिपन को परख करके।
'भौम' ने सिर नमाया है, यही वे सूर्यसागर हैं॥ ९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भजन

जय जय जय त्राता जैन सन्त। धारक सद्गुण अविचल अनन्त
सब मानवता के गुण महान. तुमरे रग रग में विद्यमान।
नहिं राग द्वेष परिणति निशान सम्यक्त्व दृग ज्ञान चरित्रवन्त

तुम जन्म जात शिशु के समान, नहिं रंच मात्र परिग्रह निदान।
नहिं काम क्रोध छल लोभ मान, निन्दक पूजक समता धरंत ॥३॥

बालकवत निर्भय निर्विकार, होके निशंक करते विहार।
सहते सब परिषह के प्रहार दुष्कर्मों से करते भिडन्त ॥४॥

अज्ञान तिमिर का कर विनाश, करदेत परम पथ का प्रकाश।
अध्यात्मवाद का कर विकाश, दिनकर ज्यों दुनियां में दिपंत ॥५॥

हित मित प्रिय वैन सुधासमान, सुन हित अनहित को होत ज्ञान।
जन वैर विरोध मिटे महान, जग से हिंसा का होत अन्त ॥६॥

जग दुख मेटन तत्पर नितान्त, तुमरे सन्मुख नहीं जात पान्त।
संतप्त हृदय को करत शान्त, ज्यों मरुधर में वर्षा बसन्त ॥७॥

अब भौमराज तुम पद प्रसाद समझा है सच्चा साम्यवाद।
जे हे तरु लघु पन का नहिं विचार तुम पामर को करते म न्त।८

मुद्रक—त्यागी फाइन आर्ट प्रेस, कटरा खुशहालराय, देहली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi